अप्रैल - दिसंबर 2011

वर्ष-43 अंक-2-4

प्रतियोगिता विशेषांक

वैज्ञानिक

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

भा.प.अ. केन्द्र के नाभिकीय कृषि तथा जैव प्रौद्योगिकी प्रभाग द्वारा विकसित फसलों की नयी प्रजातियाँ

मूल्य ₹20

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1) (क) विभिक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये - उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', 'लड़कों को'
(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिलाकर लिखा जाये -

उदाहरण - 'उसने'. 'मैंने', 'उनका', 'हमसे'

(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो, उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -

2) पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये -

उदाहरण - ' जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें।

3) संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -

उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4) जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये - उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये', 'लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये' आदि।

5) 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए।

6) 'लिये/लिए' : लिये को लिया का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभिक्ति चिन्ह।

'चाहिये/चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये।

7) एसा/ऐसा'' : 'ऐसा' लिखा जाये ।

'दिखाई/दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग) । उदाहरण - ' सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें।

8) आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -

उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए, 'कीजिए' 'रखिए' आदि।

9) अनुस्वार और आनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए -

वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा, ङ.('क' वर्ग), ञ ('च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग) तथा न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां हैं।

अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है :

उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि।

इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है। जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे।

10) एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं। जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया-हंसिये (हंसिए आदारार्थ आज्ञा रूप होगा)

11) संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप से प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित हैं. जैसे, अस्थायी, बाजपेयी,उत्तरदायी आदि। इन्हें अस्थाई, बाजपेयी, उत्तरदाई
लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक।

12)चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की जगह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये। जैसे अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां आदि।

13) संख्यां को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिखा जाये - **1, 2,3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10**

♦ 'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं.वि.सा.परिषद के पास सुरक्षित हैं. ♦ 'वैज्ञानिक' एवं हिं.वि.सा.परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिए उपयोग कर सकते हैं. परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री *'वैज्ञानिक' से साभार.*

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा.प.अ.केंद्र, ट्रांबे, मुंबई-85 के लिए **डॉ.गोविंद प्रसाद कोठियाल** द्वारा संपादित एवं **श्री विपुल सेन** द्वारा निर्भय पथिक प्रकाशन (फोन : 24153784, 32201260) में मुद्रित व प्रकाशित ।

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष - 43 अंक - 2/4

अप्रैल - दिसंबर - 2011

♦ संपादन मंडल ♦

डॉ.गोविंद प्रसाद कोठियाल

(संयोजक)

डॉ.जगदीश चंद्र व्यास

(सह संयोजक)

श्री जयप्रकाश त्रिपाठी

श्री कुलवंत सिंह

श्री कवींद्र पाठक

श्री प्रवीण दुबे

♦ व्यवस्थापन मंडल ♦

श्री विपुल सेन

(संयोजक)

श्री पी.एम.गांधी

श्री डी.एन.सिंह

श्री संजय गोस्वामी

श्री राजेश कुमार मिश्र

श्री राजेश कुमार

सदस्यता शुल्क

आजीवन

व्यक्तिगत संस्थागत

400 रु. 1000 रू.

वार्षिक

व्यक्तिगत संस्थागत

50 रु. 100 रू.

कार्यालय

'वैज्ञानिक', हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 085

सभी पद अवैतनिक हैं

अपनी बात - 2

संपादकीय - 3

लेख

1. भारतीय समानव अंतरिक्ष अभियान
   जितेंद्र खर्डे - 5
2. उच्च ताप पर धातुओं का ऑक्सीकरण व्यवहार
   भास्कर पॉल एवं जुगल किशोर - 11
3. उच्च ऊर्जा विकिरणों के जैविक प्रभाव
   डॉ. यशवंत नाईक - 15
4. जिनसिंग-एक अतुल्य वनस्पति
   सुभाष चन्द्र - 26
5. ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत
   डॉ.श्याम मनोहर व्यास - 36
6. मैंग्रोव का अदभुत संसार
   डॉ. सविता गुप्ता - 41
7. विभिन्न दृष्टि दोष और उनका निराकरण
   डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार - 58

टिप्पणी

1. जैव विविधता-संरक्षण
   डॉ. ए.के.चतुर्वेदी - 63
2. मधुमेह : कारण और उपचार
   डॉ.सरोज शुक्ला - 65
3. जापानी सूनामी, और नाभिकीय विकिरण
   संजय गोस्वामी - 66
4. भारत में भूमि क्षरण का बढ़ता संकट
   डॉ. अरविंद सिंह - 67
5. मीठा जहर है - ध्वनि प्रदूषण
   अनिल कुमार - 70
6. भारत में स्वास्थ्य सेवा की स्थिति
   संजय चौधरी - 71
7. सेहत के लिए वरदान है शहद
   अनिल कुमार - 75

विज्ञान समाचार - भा.प.अ.के.
एस.के.पाठक - 77

बुद्धि कौशल्य
डॉ.सुरेश कुमार - 80

वैज्ञानिकों के जीवन से
सलाहुद्दीन अहमद - 81

अपनी बात

वैज्ञानिक का यह विशेषांक एक संयुक्तांक (वर्ष 43 अंक 2/4) के रूप में आपके सामने है। प्रतियोगिता विशेषांक होने से इसकी साज-सज्जा और संपादन में ज्यादा समय लगा, इसलिए प्रकाशन में थोड़ा विलंब अवश्य हुआ है। इसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

इस अंक में डॉ. होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2010 की पुरस्कृत रचनाओं का समावेश किया गया है। इन रचनाओं में विविध वैज्ञानिक विषयों यथा भारतीय अंतरिक्ष अभियान से लेकर नाभिकीय विकिरणों से होने वाले जैविक प्रभावों का विवरण/विवेचन दिया गया है। हम आशा करते हैं की तकनीकी दृष्टि से इसमें दी गई जानकारी निस्संदेह हर विज्ञान प्रेमी पाठक के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। इन लेखों में भाषा की सरलता, सहजता को बनाए रखने या अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ संपादन अवश्य किया गया है। किंतु मूल रचना में कोई फेरबदल नहीं किया गया है तथा आलेख के स्वरुप को यथावत रखा गया है।

पुरस्कृत मूल लेखों के अलावा कुछ अन्य लेखों को भी इस विशेषांक में सम्मिलित किया है। जैसे विभिन्न दृष्टिदोष और उनके निराकरण पर भी एक लेख है और साथ ही साथ कुछ अन्य लेखों को टिप्पणियों के स्वरुप में रखा गया है। इनमें जैवविविधता से लेकर मधुमेह, जापानी सुनामी और नाभिकीय विकिरण, भारत में भूमि क्षरण का संकट, ध्वनि प्रदूषण, स्वास्थ्य सेवा इत्यादि सामयिक वैज्ञानिक विषयों को भी सम्मिलित किया गया हैं।

वैज्ञानिक के पिछले अंकों की तरह इस अंक में भी भाभा परमाणु अणुसंधान केंद्र के विज्ञान समाचारों का समावेश है। साथ ही इस बार एक नया स्तंभ 'बुद्धि कौशल्य' के नाम से प्रारंभ किया है। वैज्ञानिक के पाठकों का दायरा बढ़ाने के उद्देश्य से संभवतः इस प्रकार के और भी स्तंभ भविष्य में जोड़ने की योजना रहेगी। अंत में महान वैज्ञानिकों के जीवन से कुछ प्रेरणास्पद घटनाएं लेकर तीन विशिष्ट वैज्ञानिक विभूतियों का स्मरण भी इस अंक में किया गया है।

हमारा सारा प्रयत्न आपकी अपनी भाषा में विज्ञान और तकनीक से संबंधित जानकारी को स्पष्ट, सरल, सहज किंतु प्रामाणिक स्वरुप में रखने का है। इसमें हम कितनी मात्रा में सफल हुए हैं यह तो केवल सुधी पाठकों की प्रतिक्रिया से ही समझा जा सकेगा। अतः हमेशा की तरह आप की बेबाक प्रतिक्रिया/सुझावों का हम स्वागत करते हैं। यह अंक आपको कैसा लगा, इस पर भी आपके सुझावों का हमें इंतजार रहेगा।

-संपादक मंडल

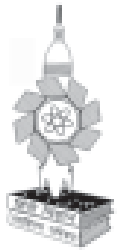

संपादकीय

वैज्ञानिक और तकनीकी अनुसंधानों का एक उद्देश्य यह भी है कि किस प्रकार से सामान्य मानव जीवन अधिक से अधिक सुखमय एवं व्याधियों से निरापद हो। हमारे अब तक के अनुभव इस बात को एक सीमा तक सिद्ध भी करते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति लगभग विस्फोटक रूप से बढ़ रही है। इसके साथ ही साथ सुखमय मानव जीवन के लिये उपयोगी अनेकानेक उपकरण भी बाजारों में तेजी से बढ़ रहे हैं। ये साधन बेहतर तरीके से जीवन निर्वाह करने में सहायक है अथवा नहीं, इस पर बहस हो सकती है, पर इन्हें संचालित करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। अतः साधनों की वृद्धि के साथ ऊर्जा उपलब्धता की मांग भी तेजी से बढ़ी है। स्थिति यह है कि आज कई विशेषज्ञ मानव समाज के विकास की स्थिति को तय करने के लिये उस समाज द्वारा प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत की दर के आकड़ों को ही विकास की अवस्था दर्शाने वाले पैमाने के रूप में उपयोग में लाने लगे हैं। इस पैमाने के अनुसार जो समाज जितनी ज्यादा मात्रा में ऊर्जा खपत प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष करता है, वह समाज उतना ही अधिक विकसित है।

संभवतः उपरोक्त पैमाना सही नहीं भी हो, पर स्थिति यह बन रही है कि हमारी ऊर्जा आवश्यकता दिनोंदिन तेजी से बढ़ती जा रही है। हमारे अपने देश में भी ऊर्जा की उपलब्धता और आवश्यकता के बीच का अंतर लगातार बढ़ रहा है। ग्रामीण अंचलों तक विद्युत ग्रिड के तार तो पहुंचे हैं, परंतु ऊर्जा की उपलब्धता नहीं हो पाने से, लोडशेडिंग या अन्य अनचाहे अनुभवों से हमें दिन रात जूझना पड़ रहा है। यहां तक की अनेक आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण उत्पादक संयंत्रों, कारखानों अथवा कृषि इत्यादि में सिंचाई या अन्यान्य उपकरणों को संचालन करने में भी आये दिन विद्युत ऊर्जा की अनुपलब्धता के कारण रुकावटें उत्पन्न हो रही हैं।

यह सही है कि इसका निराकरण केवल और केवल, अधिक ऊर्जा निर्माण के संयंत्र लगाकर ही किया जा सकता है। लेकिन, पारंपरिक रूप से उपलब्ध कोयला अथवा गैस एक सीमा तक ही यह बोझ उठा सकते हैं। पेट्रोलियम पदार्थों से संचालित संयंत्रों की कठिनाई एक ओर तो विदेशी आयातों से जुड़ी हुई है, जो हमारे लिये कभी भी संकटपूर्ण स्थिति तैयार कर सकती है। दूसरी ओर इन स्रोतों के भंडार सीमित हैं, और निकट भविष्य में हमें इनके समाप्त हो जाने के पूर्व ही नये साधनों की तलाश करनी होगी। इसके अलावा इस प्रकार के संयंत्रों से निकलने वाली गैसें, यथा CO_2, SO_2 इत्यादि वातावरण को भी प्रदूषित करेगी, जो वायुमंडलीय संतुलन को प्रभावित कर अनचाहे दुष्प्रभाव उत्पन्न कर उसे और अधिक विषाक्त बनाने में सहायक होगी।

ऊर्जा के अन्य विकल्पों में सौर ऊर्जा या उससे ही प्रेरित पन-बिजली तथा वायु जनित विद्युत है, जिनका क्रमशः प्रयोग बढ़ रहा है और यह ठीक भी है, पर इनकी उपलब्धता की अनिश्चितता के कारण केवल इन पर ही पूर्णरूपेण आश्रित होना असंभव लगता है। याद रहे प्रत्यक्ष सौर ऊर्जा दिन में ही उपलब्ध रहती हैं तथा समय और ऋतु के अनुसार इसकी तीव्रता घटती बढ़ती रहती है।

अतः शेष विकल्प हमारे पास नाभिकीय ऊर्जा है। जिसका हमें रख रखाव व संचालन का पर्याप्त अनुभव भी उपलब्ध है। हमारे विशेषज्ञ इस प्रकार के नाभिकीय ऊर्जा से संचालित विद्युत उत्पादक संयंत्रों का प्रारंभिक स्तर से लेकर व्यवसायी स्तर तक के विशिष्ट संचालनों में दक्ष एवं निपुण हैं। फिर भी सर्व सामान्य लोग नाभिकीय

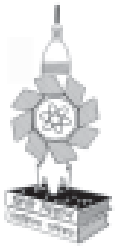

ऊर्जा के संयंत्रों का नाम सुनकर ही अनचाहे भय का शिकार हो जाते हैं। संभवतः इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि नाभिकीय ऊर्जा से औसत मानव समाज का पहला परिचय ही नाभिकीय ऊर्जा आधारित परमाणु या अणुबमों (वास्तव में नाभिकीय बमों) के विस्फोटों की खबर से हुआ। इन विस्फोटो ने द्वितीय विश्व युद्ध को तो समाप्त कर दिया। किंतु साथ ही साथ इन बमों की विनाशक छवि और अदृश्य विकिरणों के दुष्प्रभावों के समाचारों एवं अन्य पत्र-पत्रिकाओं में छपी संबन्धित किन्तु अतिरंजित कथाओं ने औसत मानव को अनजाने भयों से आशंकित भी कर दिया। स्वाभाविक है कि यह शंकाएं पूर्णतः निराधार भी नही हैं। किंतु हम जानते हैं कि एक ओर तो रेडियो सक्रिय पदार्थ या विकिरणों को हम पर्याप्त शुद्धता के साथ अति सूक्ष्म मात्राओं तक आसानी से माप सकते हैं और इस प्रकार के खतरों की पूर्व सूचना भी यथा-समय कर सकते हैं। दूसरी ओर एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि किसी न किसी रूप में नाभिकीय विकिरण हर समय और लगभग हर दिशा से एक औसत मात्रा में हमारे शरीरों को बेधते ही रहते हैं। अर्थात दुनियाँ का हर व्यक्ति नाभिकीय विकिरणों की कुछ न कुछ मात्रा से हर समय प्रभावित होता ही रहता है।

ये नाभिकीय विकिरण सूर्य अथवा अन्य अंतरिक्षीय स्रोतों के अलावा, पृथ्वी के अंदर उपस्थित रेडियो सक्रिय पदार्थों की न्यूनाधिक मात्रा से भी लगातार निकलते रहते हैं, और साधारतयाः इन्हें रोकना असंभव है। उदाहरण के रूप में हर व्यक्ति को स्वस्थ बने रहने के लिये अपने शरीर में पोटेशियम तत्व की एक औसत मात्रा (लगभग 140 ग्राम) बनाये रखना आवश्यक है। किंतु प्राकृतिक पोटेशियम के एक सूक्ष्म भाग में समस्थानिक ^{40}K भी होता है, जिसमें रेडियो सक्रियता विद्यमान है, और जो हमारे शरीर को अन्दर ही अन्दर विकिरण से प्रभावित करता ही रहता है। यद्यपि इस विकिरण की मात्रा अति अल्प (लगभग 4200 Bq) है, किन्तु शून्य नहीं। कठिनाई यह है कि सही सूचना एवं जानकारी के अभाव में, प्रसार माध्यमों के झोलाछाप प्रतिनिधियों द्वारा तैयार की गयी अस्पष्ट सूचनाएं, अथवा कुछ जानकारी को लेकर अटकलबाजी द्वारा तैयार की गयी भ्रान्त सूचनाएं सामान्य लोगों तक पहुंच जाती हैं। पूर्णतः ठीक न होने से इनके द्वारा फैला भय औसत व्यक्ति को डराने के लिये पर्याप्त वातावरण बना देता है और सर्व सामान्य व्यक्ति भय ग्रस्त हो जाता है।

सच्चाई यह है कि नाभिकीय ऊर्जा का उपयोग विद्युत उपलब्ध कराने के लिए बड़े पैमाने पर अनेक देशों में हो रहा है। फ्रांस में तो वहां की कुल ऊर्जा उत्पादन का लगभग 75% हिस्सा केवल नाभिकीय ऊर्जा (विखण्डन) से ही तैयार होता है। जबकि हमारे यहां अब तक सिर्फ सकल ऊर्जा उत्पादन का लगभग 3-4% भाग ही नाभिकीय रिएक्टरों द्वारा निर्माण होता है। अतः समय रहते हमें ऊर्जा क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए इस दिशा में तेजी से बढ़ना आवश्यक है।

वैसे भी हमारे जैसे विकासशील देश को ऊर्जा उत्पादन के लगभग सभी विकल्पों पर लगातार कार्य करते रहना आवश्यक है। परंतु नाभिकीय ऊर्जा के सुरक्षित एवं प्रभावी होने के अलावा दूरगामी लाभ भी है। पर्यावरण को सुरक्षित रखने के अलावा भविष्य में बनने वाले ब्रीडर रिएक्टर, जो अपना ईंधन भी स्वयं साथ-साथ बनाते रहेंगे, उनके विकास में भी इस दिशा में बढ़ने से सहायता मिलेगी। स्मरण रहें, भविष्य के संलयन रिएक्टरों के बन जाने तक, तेलादि ईधनों के समाप्त हो जाने पर ये ब्रीडर रिएक्टर ही ऊर्जा आवश्यकता को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले हैं। आनेवाले समाज के सुनहरे भविष्य के लिये, हमें जागृत रहकर यथोचित कदम बढ़ाते रहना पड़ेगा।

-डॉ. जगदीश चंद्र व्यास

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2010 में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

भारतीय समानव अंतरिक्ष अभियान

- जितेंद्र खर्डे -
जूनियर इंजीनियर
अंतरिक्ष उपयोग केंद्र (इसरो), अहमदाबाद-380015

अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगतियों ने पिछले पांच-छः दशकों में अपनी अद्वितीय क्षमताओं के कारण विश्व में सामाजिक और आर्थिक क्रांति स्थापित की है। अंतरिक्ष विज्ञान ने समय और दूरी दोनों को सिकोड़ कर समग्र विश्व को एक छोटे से प्रांत की भांति बना दिया है। भारत ने भी अपने सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी की विस्तीर्ण क्षमताओं को पहचानकर एक बृहद महत्वाकांक्षी अंतरिक्ष कार्यक्रम बनाया और उसका कार्यान्वयन शुरु किया। विगत करीब साढ़े चार दशकों में भारत ने विविध अंतरिक्ष प्रणालियों की अभिकल्पना, विकास तथा उनके प्रचालन में महत्वपूर्म प्रगति हासिल की है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान (इसरो) के सामने सन् 2035 तक के अंतरिक्ष कार्यक्रम मौजूद हैं। जिसमें पुनरुपयोगी प्रक्षेपण यान , भारतीय क्षेत्रीय नौसंचालन उपग्रह तंत्र, चंद्रयान-।। अभियान के अंतर्गत चंद्रमा पर एक अवतरण मंच और मून-रोवर उतारने की योजना है. इसमें बहुचरणीय राकेटों की जगह एकल चरण द्वारा कक्षा में प्रवेश यान का विकास और समानव अंतरिक्ष अभियान के अंतर्गत एक या दो अंतरिक्ष यात्रियों को पृथ्वी से 400 कि.मी. की नजदीकी भ्रमणकक्षा में भेज कर सकुशल वापस लाना भी शामिल है। प्रस्तुत लेख में इस अभियान का एक संक्षिप्त परिचय दिया गया है। (सं.)

दिसंबर 2008 में रुस के राष्ट्रपति की भारत यात्रा के दौरान भारत और रुस के बीच समानव अंतरिक्ष अभियान के तकनीकी एवं अंतरिक्ष यात्री प्रशिक्षण क्षेत्र में आपसी सहयोग के लिए एक समझौते पर दोनों देशों ने हस्ताक्षर किये थे। इसके अनुसार सन् 2013-14 में रुसी अंतरिक्ष यान सोयुझ की उड़ान पर प्रशिक्षण प्राप्त प्रथम दो भारतीय मूल के अंतरिक्ष यात्री अंतरिक्ष में जायेंगे. जिससे भारत को कर्मीदल के चयन, प्रशिक्षण कर्मीदल आपातकालीन बचाव प्रणाली, तथा जटिल उड़ान प्रणालियों का अनुभव मिलेगा। उसके बाद सन् 2015 में भारतीय समानव अंतरिक्ष अभियान का प्रथम प्रक्षेपण होगा। इसी वर्ष (2008) में नासा और इसरों के बीच भी भारत के समानव अंतरिक्ष अभियान के

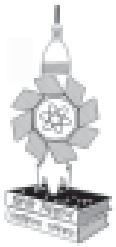

विविध तकनीकी क्षेत्रों में आपसी सहयोग के लिए हस्ताक्षर हुए थे। तत्पश्चात भारत सरकार ने इस प्रस्तावित अभियान कै सभी पहलुओं पर गहन अध्ययन करके वित्तीय अनुमोदन दिया और योजना आयोग ने भी इस अभियान को कार्यान्वित करने के लिए हरी झंडी दिखा दी।

इस समस्त अभियान को 8 से 10 साल की समयावधि में तीन चरणों में पूरा किये जाने की संभावना है।

अभियान के प्रथम चरण में सन् 2013-14 में पीएसएलवी प्रक्षेपण यान द्वारा मानव रहित उड़ान प्रस्तावित है। इसमें मुख्यतः कक्षीय यान के सिर्फ कर्मीदल मॉड्युल (CREW MODULE) को प्रक्षेपित किया जाएगा. इस चरण में कर्मीदल मॉडयुल की विविध नियंत्रण उपप्रणालियां, यान की आकस्मिक निष्कासन प्रणाली, और उसके महत्वपूर्ण पुनः प्रवेश (RE-ENTRY) तंत्र का यथार्थ परीक्षण किया जाएगा।

द्वितीय - चरण में सन् 2014-15 के दौरान देश में ही निर्मित जीएसएलवी मार्क-II प्रक्षेपण यान, (जिसकी भार वहन क्षमता लगभग 8 टन की है) के द्वारा दो मानवरहित प्रक्षेपण (Technology Demonstration -TD) आयोजित किए जाएंगे। इन दोनों उड़ानों में प्रथम चरण की सभी प्रणालियों के साथ-साथ सेवा मॉड्युल (Service Module - SM) एवं उसकी सभी उप-प्रणालियां, वातावरण नियंत्रण और जीवन रक्षक प्रणाली (Environment Control and Life Support System -ECLSS), स्पेससूट और अन्य अत्यावश्यक विवेचित सुविधाओं को समेकित किया जाएगा। इन उड़ानों की सफलता से कक्षीय यान (Orbital Vehicle - OV) की सभी प्रणालियों का परीक्षण एवं उनकी शत प्रतिशत यथार्थता का विश्लेषण किया जाएगा।

तृतीय - चरण के अंतर्गत सन् 2015-16 में स्वदेशी जीएसएलवी मार्क-III, प्रक्षेपण यान, जिसकी भार वहन क्षमता लगभग 10 टन की है, के द्वारा भारतीय मूल के दो प्रशिक्षित अंतरिक्ष यात्रियों को एक संपूर्ण स्वायत्त कक्षीय यान (OV) के द्वारा पृथ्वी की सतह से 400 कि.मी.ऊंचाई की निम्न भू-कक्षा में प्रक्षेपित करके 2 से 7 दिनों के बाद सकुशल पृथ्वी पर अवतरण कराना है।

इस समानव अंतरिक्ष अभियान के लिए इसरो के सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र, श्रीहरिकोटा, आंध्रप्रदेश केंद्र के तीसरे नये प्रमोचन मंच का उपयोग करके भारत अपने प्रथम समानव अंतरिक्ष अभियान का शुभारंभ करेगा, जिसे बंगाल की खाड़ी या अरब सागर में किसी निर्धारित स्थान पर सकुशल अवतरण करना है।

इन सभी उड़ानों के साथ-साथ इनसे संबंधित दीर्घकालिक भूमिगत सुविधाएं बेंगलुर और इस्ट्रेक (भोपाल, लखनऊ, श्रीहरिकोटा) स्थित दूरमिति, दूरांदेश एवं अनुवर्तन केंद्रों को इस अभियान हेतु उन्नत करना, और एक अद्यतन अंतरिक्ष यात्री प्रशिक्षण एवं परीक्षण केंद्र सन् 2013 तक पूरा करने की योजना भी शामिल है।

प्रमुख उद्देश्य

अंतरिक्ष के अजूबे अनंत रहस्यों को जानने की खोज करने के लिए विश्व के वैज्ञानिक समुदाय निरंतर प्रयास कर रहे हैं। कई देशों (रुस, अमरिका, चीन आदि) ने अंतरिक्ष में विविध इलेक्ट्रो-यांत्रिक (ELECTRO-MECHANICAL) उपकरण जैसे रोबोट, मुनलेन्ड रोवर, अंतरिक्ष प्रोब आदि भेज कर अनेक अन्वेषण कार्य किए हैं। सामान्यतया इन कार्यों को अंजाम देने के लिए कई महिने/साल लग जाते हैं। किन्तु ये सभी अन्वेषण कार्य यदि मानव द्वारा संपन्न किए जाए तो समय और धन दोनों की बचत हो सकती है। क्योंकि मानव में परिस्थिति को समझ कर उसके अनुसार समस्या सुलझाने की क्षमता होती है। इसलिए अंतरिक्ष अभियानों में मानव और रोबोटिक उपकरण दोनों की आवश्यकता है। इसका ज्वलंत उदाहरण है ''कनार्ड आर्म'', जिससे अंतरिक्ष यात्रियों ने अनेक जटिल कार्यों को अंतरिक्ष में ही संपन्न किया है।

मानव को अंतरिक्ष में भेजने की क्षमता आज विश्व के कुछ गिने-चुने देशों के पास ही है। अगर भारत भी इनमें शामिल हो जाता है तो अवश्य ही उसकी ख्याति सारे विश्व में बढ़ेगी।

समानव अंतरिक्ष अभियानों के दौरान जितनी भी नई-नई तकनीकियों की खोज हुई हैं, उन सभी का धरती पर सामाजिक उपयोग हो रहा है। उदाहरण के तौर पर कृत्रिम उपग्रहों को अंतरिक्ष में विद्युत ऊर्जा प्रदान करने के लिये विकसित किये गये सोलर सेल और पेनल पृथ्वी पर उपयोगी हो रहे हैं। इसी तरह ऊर्जा निर्माण में सहायक अंतरिक्ष अभियानों के लिये विकसित किये गये हाइड्रोजन फ्युअल सेल (HYDROGEN FUEL CELL) से पृथ्वी पर वाहन चलाये जा रहे हैं। इससे खनिज तेल की बचत के साथ पर्यावरण को साफ रखने में मदद मिलती है।

भारतीय समानव अंतरिक्ष अभियानों का और एक महत्वपूर्ण उद्देश्य वर्तमान समय में विज्ञान और तकनीकी के मूलभूत अनुसंधान (BASIC RESEARCH) के क्षेत्र में विद्यार्थियों की रुचि जागृत करना भी है। अन्तरिक्ष यात्रियों के अनुभव हमारी युवा पीढ़ी को अंतरिक्ष यात्रियों के वैज्ञानिक, इंजीनियर और अन्वेषक बनने को प्रेरित कर सकते हैं।

भारतीय समानव अभियान के प्रमुख आकर्षण :

इस अभियान का प्रमुख लक्ष्य भारतीय मूल के अंतरिक्ष

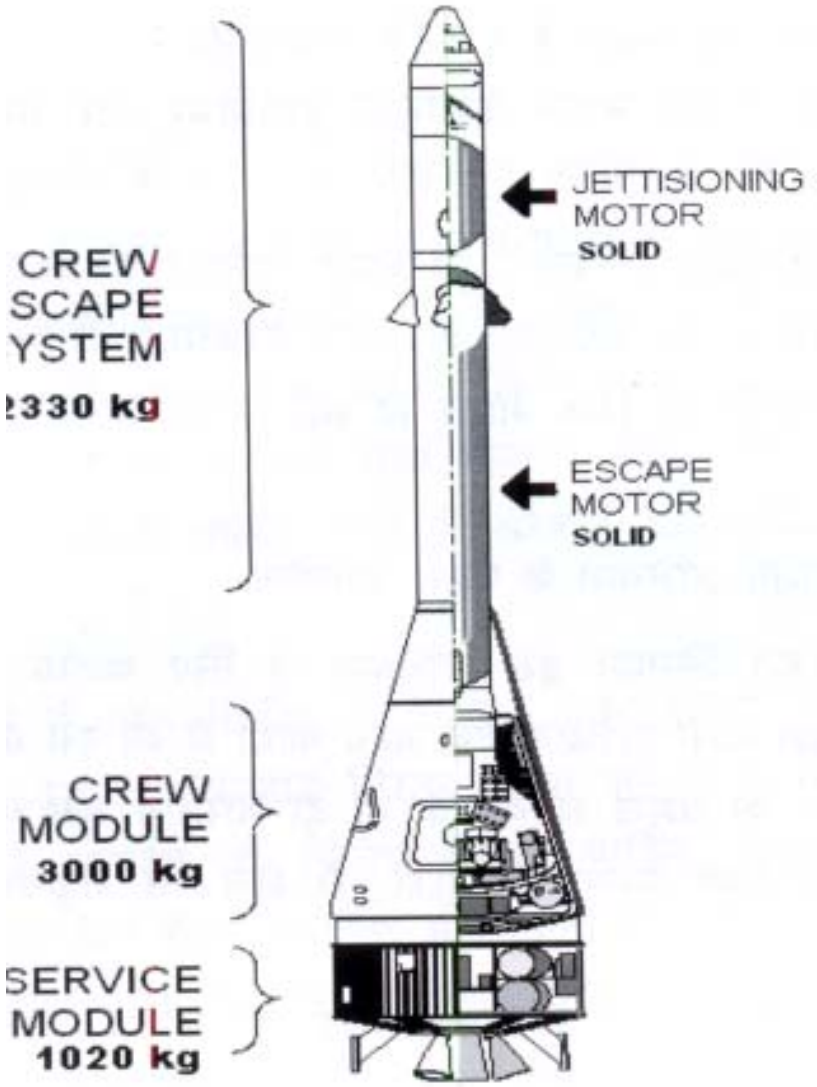

ORBITAL VEHICLE CONFIGURATION

यात्रियों को पृथ्वी की नजदीकी भ्रमणकक्षा में भेज कर सकुशल पृथ्वी पर अवतरण कराना है।

इसमें आपातकालीन स्थिति में अभियान को स्थगित करने और चालक दल/कक्ष का बचाव करने की क्षमता अर्जित करना तथा अंतरिक्षीय कक्षा (+/-125 कि.मी. से +/-60 कि.मी. तक की रेंज) में मेनुवर करना।

चालक कक्ष की सुविधायुक्त डिजाइन।

समग्र मिशन के दौरान गुरुत्वीय त्वरण में 9g से 4g तक का बदलाव लाना।

सुरक्षित पूर्वनिर्धारित स्थान पर पुनःप्रवेश

जमीन या पानी पर अवतरण (LANDING) के लिए संपूर्ण सज्जता।

अवतरण के लिए चालक कक्ष की गति को 2 मीटर/सेकंड तक नियंत्रित करके पेराशूट अथवा त्वरण उपकरण द्वारा सुरक्षित अवतरण।

स्वदेशी जीएसएलवी मार्क-।। या मार्क ।।। द्वारा प्रक्षेपण।

अभियान का संरूपण

भारत का प्रस्तावित समानव अंतरिक्ष अभियान इसरो के भावी महत्वाकांक्षी एवं चुनौतीपूर्ण मिशनों में से एक है। इस अभियान की सबसे बड़ी चुनौती है- अंतरिक्ष यात्री की

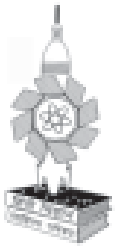

संपूर्ण सुरक्षा। इसके लिये कक्षीय यान का संरुपण कुछ इस प्रकार से किया जाएगा, जो मानव के लिए आरामदायक हो और प्रतिकूल अवस्था में भी मानव की सहनशक्ति की सीमा में हो। इस यान को आपातकालीन कर्मीदल बचाव प्रणाली (Crew Escape System - CES) के साथ एकीकृत करके प्रक्षेपण यान के ऊपरी हिस्से में संरुप किया जाएगा। कक्षीय यान की बाहरी संरचना चरण क़ी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अभिकल्पित की जाएगी। ताप एवं उत्केन्द्रता सतह को कम करने के लिए तथा पर्याप्त युक्तिचालन उपलब्ध कराने के लिए एक सेमी बेलास्टिक केप्सुल को अंतिम रुप दिया जाएगा।

कर्मीदल मॉड्युल के भीतर नियंत्रण प्रणाली तथा मिशन के दौरान विश्रांति के लिये कर्मीदल आवास की संरुपणा की जाएगी। जिसमें सामान्य ताप एवं दाब का वातावरण, अंतरिक्ष यात्री के प्रवेश हेतु उचित कट-आउट (1200 x 800 mm) यात्रियों को बाहरी अंतरिक्ष दृश्य देखने के लिए पारदर्शी आवरण और विविध वैज्ञानिक प्रयोग हेतु आवश्यक सुविधाएं होगी। इसमें समस्त अभियान प्रबंधन की आवश्यक उप-प्रणालियां संलग्न की जाएगी। सेवा मॉड्युल में प्रणोदक नियंत्रण के लिए आवश्यक प्रणालियां होगी, साथ में अतिरिक्त नोदन प्रणाली को न्युनाधिक करने के लिए आवश्यक संरुपण भी शामिल होगा। यान के उत्प्रस्थान (TAKE OFF) एवं अवतरण (LANDING) के दौरान समग्र अभियान में किसी भी परिस्थिति के अनुरुप आवश्यक बदलाव भी इस संरुपण में शामिल होगा। किसी भी आपातकालीन परिस्थिति में कर्मीदल बचाव प्रणाली के द्वारा अंतरिक्ष यात्री के साथ कर्मीदल मोड्युल को सुरक्षित स्थान पर अलग किया जाएगा। कर्मीदल को शत-प्रतिशत सुरक्षा एवं आरामदायक अवस्था में रखकर अभियान के प्रक्षेपण को अंतिम रुप दिया जाएगा।

कक्षीय यान का अंतिम संरुपण ताप रोधक प्रणाली मॉड्युल एवं एरोडायनेमिक ढांचे के साथ संचार प्रणाली तथा अन्य तंत्रों को जोड़ कर किया जाएगा. कर्मीदल मॉड्युल द्विपरिती ढांचा होगा. जिसका बाह्य व्यास 3.1 मीटर तथा बाहरी दीवार का भिन्न कोण 14 डिग्री होगा। कर्मीदल मॉड्युल का अंतरिक्ष यात्री केबिन 6.0 घन (क्युबिक) मीटर का होगा।

सेवा मॉड्युल कक्षीय यान का मानवरहित तथा असंपीडित भाग होगा जिसमें उपभोग्य सामग्री तथा अन्य नियंत्रण एवं नोदन प्रणालियां होगी, जिनका कर्मीदल मॉड्युल से सीधे संपर्क अथवा प्रत्यक्ष प्रचालन में कोई उपयोग नहीं होगा। इसके साथ ही अवतरण के दौरान कर्मीदल मॉड्युल को इसकी आवश्यकता नहीं होगी।

सेवा मॉडयुल से अभियान के दौरान प्रणोदक एवं डिबुस्टर ईंधन का नियंत्रण किया जाएगा। इसके डिबुस्टर ईंधन को प्रलंबित करके कर्मीदल मॉड्युल को कक्षा से बाहर लाया जाएगा। इसके बाद सेवा मॉड्युल अलग हो जाएगा और कर्मीदल मॉड्युल अपनी पेराशूट खोल कर उसका वेग 8 मीटर/सेकंड तक कम कर देगा। पृथ्वी की ओर से आने के बाद अवतरण के कुछ समय पहले यह वेग़ 2 मीटर/सेकंड कर दिया जाएगा। जिससे वह भूमि या समुद्र में कही भी अवतरण कर सकेगा।

प्रक्षेपण यान :

8 या 10 टन की प्रक्षेपण क्षमता वाले जीएसएलवी मार्क-II या मार्क-III प्रक्षेपण यान 275 से 400 कि.मी. वाली पृथ्वी की निम्न भू-कक्षा में समानव कक्षीय यान को स्थापित करने में सक्षम होगा। यह समानव उड़ान श्रेणी का प्रक्षेपक होगा जिसका ऊपरी हिस्सा कक्षीय यान की आकस्मिक बचाव प्रणाली (CES) से सज्जित होगा। यह प्रणाली आपातकालीन परिस्थिति में मुख्य यान को प्रक्षेपण यान से अलग कर देगी, जिससे वह पेराशूट के जरिये पृथ्वी पर अवतरण कर सकेगा।

अभियान नियंत्रण केंद्र (Mission Control Centre - MCC)

समानव अंतरिक्ष अभियान को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए अभियान नियंत्रण केंद्र की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अभियान के विविध चरणों में जैसे प्रक्षेपण, आरोहण, कक्षीय एवं अवरोह चरण, पुनः प्रवेश तथा अवतरण, इन सभी स्थितियों में यान पर निगरानी रखने के लिए एक अध्यतन तकनीकियों से सज्जित अभियान नियंत्रण केंद्र (MCC) की आवश्यकता रहती है। इसरो के श्रीहरिकोटा तथा बेंगलुरू में उपलब्ध दूरमिति, दूरांदेश एवं अनुवर्तन आदेश जाल (TRACKING NETWORK) की वर्तमान सुविधाओं को उन्नत करके समानव अभियान योग्य बनाया जाएगा। 18 मीटर तथा 32 मीटर एन्टिना वाले भू-केंद्र इस तरह के अभियानों को नियंत्रित करने में पूरी तरह से सक्षम है। इन्हें आवश्यकता के अनुरुप संरुपण (CONFIGURATION) करके अभियान हेतु तैयार किया जाएगा।

आपातकालीन कर्मीदल बचाव प्रणाली

किसी भी समानव अभियान में यह प्रणाली अत्यंत आवश्यक होती है। अभियान के विभिन्न चरणों में कर्मीदल की सुरक्षा सुनिश्चित करना इसका मुख्य उद्देश्य होता है।

साथ ही साथ यह प्रणाली अभियान को उच्च विश्वसनीयता भी प्रदान करती है।

यह प्रणाली एक ऐसे लोजिक पर अभिकल्पित की जाती है, जो प्रक्षेपण मंच से लेकर अभियान के प्रत्येक चरण में तात्कालिक परिस्थिति का आंकलन कर सके। किसी भी आपातकालीन परिस्थिति में जब प्रक्षेपण यान के निष्पादन परिमापक अपनी सामान्य सीमाओं का उल्लंघन करते हैं तब यह प्रणाली सक्रिय हो जाती है। जिसके फलस्वरुप कक्षीय यान का प्रक्षेपण यान से तत्काल ही निष्कासन हो जाता है।

इस प्रणाली का प्रचालन क्रु (CREW) पलायन मोटर को प्रज्जवलित करके किया जाता है। यह मोटर एक सुनिश्चित परिपथ पर अनुगमन करते हुए कक्षीय यान को 4g अर्थात 40 मी. से $^{-2}$ के त्वरण से दूर ले जाती है। उसके बाद स्वचालित पेराशूट एसेंबली खुल जाती है। इस पेराशूट की गति को ब्रेकिंग मोटर प्रज्वलित करके 2 मी.सें.$^{-1}$, तक लाया जा सकता है। इस तरह कक्षीय यान आपातकालीन परिस्थिति में प्रक्षेपण मंच/यान से सुरक्षित दूरी पर पहुंच जाता है और कर्मीदल का बचाव होता है।

प्रक्षेपण सुविधाएं

अभियान के आरोहण (ASCENT) चरण से लेकर अवतरण (DESCENT) चरण तक के संपूर्ण समयकाल को मोनिटर करने के लिए करीब 41 भू-केंद्रों का सहयोग लिया जाएगा, जिसमें अंतरराष्ट्रीय सहयोग भी शामिल है। भ्रमण काल के दौरान कक्षीय यान (OV) की 90% दृश्यता (VISIBILITY) के लिये तथा भू-केंद्रों की संख्या कम करने हेतु आईडीआरएसएस (Indian Date Relay Satellite System) प्रणाली विकसित करने का प्रस्ताव भी रखा गया है।

समानव अभियान का संक्षिप्त विवरण :

इस अभियान में मानव (अंतरिक्षयात्रियों) को स्पेस-सूट पहने हुए, पेराशूट हार्नेस (स्वचालित ओपनर के साथ) एवं अन्य जीवन रक्षक प्रणाली (LIFE SUPPORT SYSTEM) उपकरणों के साथ ही कर्मीदल मॉडयुल में सुविधाजनक स्थिति में बैठाया जाएगा। जिससे किसी भी आपातकालीन स्थिति में उन्हें वहां से सुरक्षित निकालने में सुविधा रहेगी।

उसके बाद कक्षा में पहुंचने पर चालक दल मॉड्युल को सेवा मॉड्युल (SERVICE MODULE) के साथ एकीकृत किया जाएगा। सेवा मॉड्युल कक्षीय यान का मानवरहित भाग होगा। यहां से यान के प्रणोदक, डि-बुस्टर ईंधन और सोलर पैनल का संचालन तथा नियंत्रण भी होगा। इस संपूर्ण संरचना को सीईएस प्रणाली के नीचे जोड़कर मुख्य प्रक्षेपण यान (जीएसएलवी मार्क-II, या मार्क- III) के ऊपरी हिस्से में मुख्य प्रदाय भार (PAYLOAD) के रुप में जोड़ दिया जाएगा।

मुख्य प्रक्षेपण यान प्रथम चरण में S-1–39 मुख्य रोकेट एवं 4 L40H प्रकार के बुस्टर रोकेट होंगे। जो प्रक्षेपण यान को जमीन से उठने क़े लिए जरूरी प्रतिबल (THRUST) प्रदान करेंगे। दूसरे चरण में L37.5H लिक्विड प्रोपेलन्ट स्टेज होगा। इस चरण की सहायता से यान की जरुरत के अनुसार गति

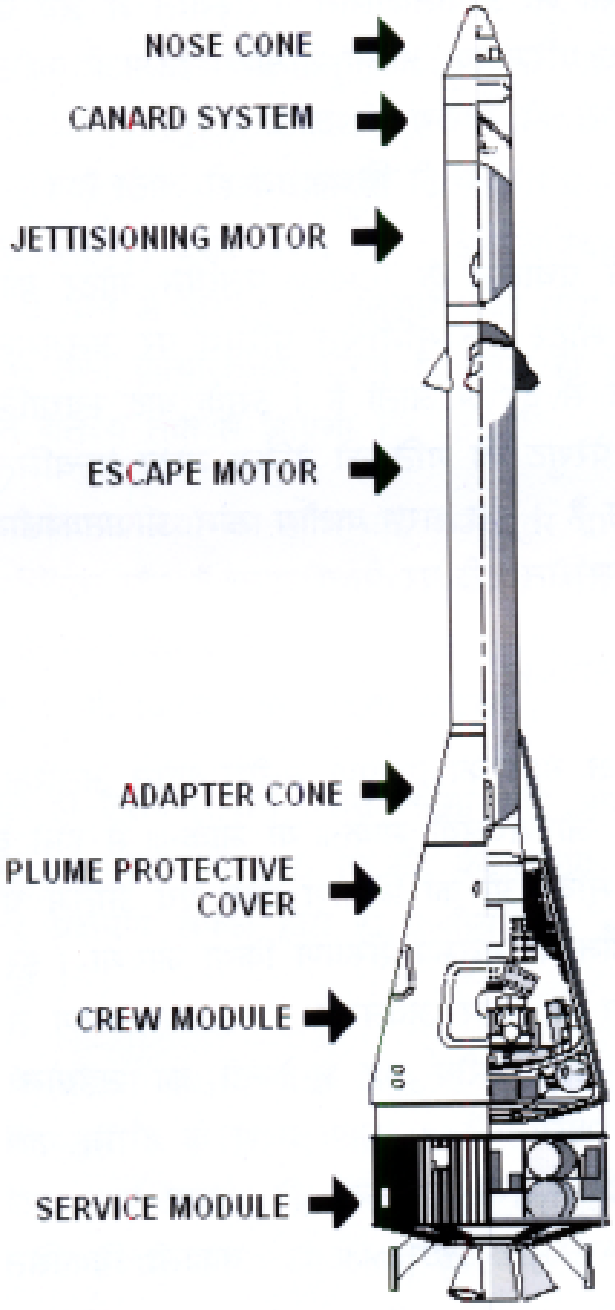

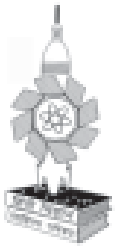

तथा ऊंचाई प्राप्त की जाएगी। तीसरा चरण जो CUS-15 सेमी क्रायोजेनिक चरण है, बहुत ही महत्वपूर्ण है, यह कक्षीय यान को अपने निर्धारित गंतव्य क़क्षा तक ले जाएगा।

प्रक्षेपण यान की सभी उप-प्रणालियों को ओन-बोर्ड कम्प्यूटर द्वारा परीक्षण करने के बाद उड़ान के लिए तैयार किया जाएगा।

उल्टी गिनती के शून्य होते ही प्रक्षेपण यान उड़ान भरेगा और अपने निर्धारित पथ से होते हुए चालक दल मॉड्युल को पृथ्वी की 275 कि.मी. की भ्रमण कक्षा में 45.5 डिग्री कोण पर स्थापित कर देगा। प्रक्षेपण सफल होते ही कक्षीय यान के सभी उपकरण अपना-अपना कार्य शुरु कर देंगे।

पुनः प्रवेश (RE-ENTRY) के दौरान कक्षीय यान के ढांचे में घुमाव उत्पन्न किया जाता है तथा उसे उचित दिशा दी जाती है। जिससे यान धीरे-धीरे घुमते हुए नीचे की ओर आता है। लगभग 8 किमी. की ऊंचाई पर आने पर प्रथम पेराशूट खोला जाता हैं। यह प्रक्रिया दाब एवं स्प्रिंग का प्रयोग करके की जाती है। 300 मी. की ऊंचाई आने पर मुख्य पेराशूट खोला जाता है, जिससे मॉड्युल की गति 35 किमी प्रति घंटा हो जाती है। पृथ्वी पर अवतरण के कुछ ही समय पहले इसकी गति को 2 मीटर प्रति सेकंड ला कर भूमि अथवा पानी में अवतरण कराया जाता है।

समानव अंतरिक्ष अभियान की उपयोगिताएं

बाह्य अंतरिक्ष एक अनुसंधान प्रयोगशाला के समान है। भविष्य में हमारे वैज्ञानिक अंतरिक्ष में रह कर कुछ ऐसे पदार्थों, प्रयुक्तियों का निर्माण कर सकते हैं, जिनका निर्माण पृथ्वी पर बहुत ही कठिन या तो असंभव है। अंतरिक्ष यात्रा के कुछ प्राकृतिक लाभ भी है, जहां, शून्य गुरुत्वाकर्षण उच्च निर्वात, परमशून्य के नजदीक या तो अत्याधिक उच्च तापमान जैसी परिस्थिति उपलब्ध करना आसान है। अतः जो अनुसंधान या उत्पादन कार्य, पृथ्वी पर मानव जाति के लिए नुकसानदेह साबित हो सकते हैं वे अंतरिक्ष में आसानी से किये जा सकते हैं।

वर्तमान समय में पृथ्वी की निकटवाली कक्षा (LEO) में अनेक देशों के बहु-उद्देशीय कृत्रिम उपग्रह भ्रमण कर रहे हैं। कई बार ऐसा होता है कि इनमें आई छोटी सी त्रुटि या खराबी पूरे अभियान को प्रभावित करती है, पर अब समानव अंतरिक्ष अभियानों के उपयोग से इन त्रुटियों को ठीक किया जा सकेगा।

केलिफोर्निया, फ्लोरिडा, स्वीडन, युनाइटेड अरब अमिरेट्स (UAE) सहित अनेक स्थानों पर अंतरिक्ष पर्यटन हेतु अवसंरचना का विकास किया जा रहा है।

अंतरिक्ष पर्यटन (SPACE TOURISM) एक नये उद्योग के रुप में विकसित हो रहा है। खर्चीला होते हुए भी पर्यटकों का अंतरिक्ष की ओर रुझान बना हुआ है।

इंटरनेशनल स्पेस स्टेशन (ISS) बाह्य अंतरिक्ष अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण परियोजना है। जिसमें अमेरिका, रुस, जापान, कनाडा और कई युरोपियन देश शामिल हैं। इसमें बहुत से अनुसंधान कार्य, अंतरिक्ष की वास्तविक स्थिति में हो रहे हैं। इस प्रकार के स्टेशन में अंतरिक्ष यात्रियों को ले जाने, वापस लाने तथा अन्य जीवनोपयोगी सामग्री पहुंचाने के लिए समानव अभियान बहुत उपयोगी है।

तकनीकी/प्रौद्योगिकीय लाभ :

बाह्य अंतरिक्ष अन्वेषणों द्वारा पृथ्वी और सौर-प्रणाली की उत्पत्ति, विकास एवं उसकी विविधता की जानकारी प्राप्त होगी। सौर प्रणाली के अन्य ज्ञात तथा अज्ञात ग्रहों पर जीवन तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों की खोज में सहायता मिलेगी। ग्रहीय अन्वेषणों के माध्यम से मानव जीवन के लिए वैकल्पिक आवास के लिए खोज की जा सकती है।

अप्रत्यक्ष लाभ :

समानव अंतरिक्ष अभियान से अत्यंत विश्वसनीय एवं उन्नत अंतरिक्ष प्रणालियों का विकास होगा। अंतरराष्ट्रीय स्तर की वाणिज्य प्रक्षेपण सेवाओं का निर्माण होगा। इस अभियान के लिए देश में नई-नई संस्थाओं का निर्माण होगा, जैसे अंतरिक्ष यात्री प्रशिक्षण केंद्र, जैव अंतरिक्ष-यांत्रिकी अनुसंधान केंद्र आदि। इनका उपयोग देश की विमानन सेवा/सुरक्षा सेवा आदि में बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। अन्य अप्रत्यक्ष लाभों में ऊर्जा, पर्यावरण, स्वास्थ्य, जीव-विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्रों में भी अनुसंधान और जानकारी संभव है।

अन्ततः हम निष्कर्ष ले सकते हैं कि भारतीय समानव अंतरिक्ष अभियान भारत (इसरो) के भावी महत्वाकांक्षी एवं चुनौतिपूर्ण अंतरिक्ष कार्यक्रमों में से एक है। इसका मुख्य उद्देश्य एक या दो भारतीय मूल के अंतरिक्ष यात्रियों को पृथ्वी की निम्न भू-कक्षा में प्रक्षेपित करके 4 या 6 दिनों के बाद पृथ्वी पर सुरक्षित अवतरण कराना है। भारत ने एसआरई और चंद्रयान-1 अभियान के अंतर्गत समानव अभियान हेतु लगभग सभी उपयुक्त प्रणालियां, प्रयुक्तियों का विकास और परीक्षण कर लिया है। कुछ नई प्रौद्योगिकियां, जैसे वातावरणीय जीवन रक्षण प्रणाली (ENVIRONMENTAL LIFE SUPPORT SYSTEM) स्पेस-सूट, उन्नत नोदन प्रणाली आदि का विकास कार्य देश में ही तेजी से चल रहा है।

इस अभियान के दौरान विकसित की गयी कई नई तकनीकों अथवा प्रयुक्तियों का उपयोग देश के सामाजिक, औद्योगिक विकास में होने की विशाल संभावनाएं है।

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2010 में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

उच्च ताप पर धातुओं का ऑक्सीकरण व्यवहार

- भास्कर पॉल एवं जुगल किशोर -
पदार्थ वर्ग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई

धातुओं एवं मिश्रधातुओं की ऑक्सीकरण एक सामान्य प्रक्रिया है। विज्ञान एवं तकनीकी दोनों दृष्टिकोणों से ऑक्सीकरण की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है। उच्च ताप पर धातुओं एवं मिश्र धातुओं का ऑक्सीकरण कई घटकों पर निर्भर करता है, जैसे तापमान, समय, ऑक्सीजन का आंशिक दाब, हवा अथवा ऑक्सीजन की प्रवाह दर इत्यादि। प्रस्तुत लेख में ऑक्सीकरण की प्रक्रिया का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है एवं विभिन्न घटकों पर ऑक्सीकरण से होने वाले प्रभाव को सहजतापूर्वक दर्शाया गया है। अंत में उदाहरण के तौर पर मोलिब्डिनम (ऑक्सीकरण अप्रतिरोधक धातु) एवं मोलिब्डिनम सिलिसाइड (ऑक्सीकरण प्रतिरोधक मिश्रधातु) के ऑक्सीकरण व्यवहार के बारे में चर्चा की गई है।

ऑक्सीकरण की प्रक्रियाः

धातुओं एवं मिश्र धातुओं की ऑक्सीजन के साथ विद्युतरासायनिक अभिक्रिया के कारण किसी विशेष पर्यावरण में अनवरत क्षीण होने की प्रक्रिया को ऑक्सीकरण कहा जाता है। ऑक्सीकरण प्रक्रिया को समझने के लिए शोध कार्य विश्वभर में किया गया है और महत्वपूर्ण जानकारियां एकत्रित की गई हैं। उच्च ताप पर किसी विशेष पर्यावरण में पदार्थ की आयु की जानकारी एवं उचित पदार्थ चयन के लिए ऑक्सीकरण की प्रक्रिया को समझना जरुरी है। ऑक्सीकरण में सम्मिलित रासायनिक अभिक्रिया (समीकरण 1) एवं धातु का ऑक्साइड में परिवर्तन (चित्र 1) सहज रुप से निम्न तरीके से प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$n\,M + 0.5\,k\,O_2 = M_nO_k \text{----------(1)}$$

ऊष्मागतिकी के नियमानुसार ऑक्सीकरण के लिए परिचालक बल, ऑक्साइडों के निर्माण के कारण मुक्त ऊर्जा में अंतर को माना जाता है। कुछ धातु (अभिजात धातु (noble metal), जैसे, सोना (Au), चांदी (Ag), प्लेटिनम (Pt), जिनका ऑक्सीजन आंशिक दाब, ऑक्साइड के विलयनन दाब (dissolution pressure) से अधिक होता है। उन पर ऑक्साइड की परत नहीं बन पाती है। इन पर ऑक्साइड की परत 500^{0}C ताप के नीचे अस्थायी होती है। कुछ धातुओं जैसे मोलिब्डिनम (Mo), ऑस्मियम (Os) इत्यादि के ऑक्साइड वाष्पशील होने के कारण वाष्पित हो जाते हैं, जिसके फलस्वरुप प्रचुर मात्रा में धातु का क्षरण होता है। अतः उच्च ताप पर इन धातुओं का उपयोग नहीं किया जा

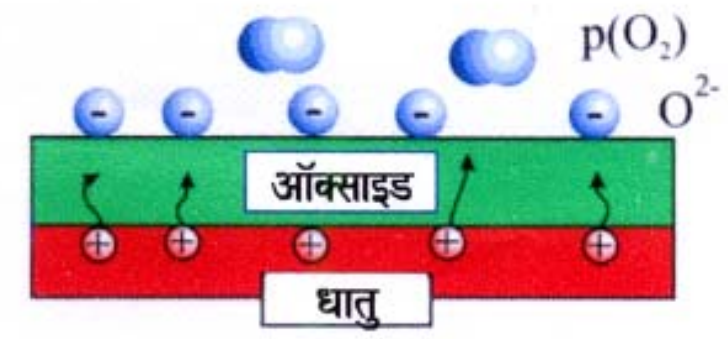

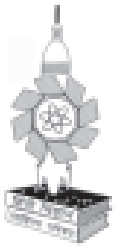

सकता है।

धातुओं में ऑक्सीकरण की प्रक्रिया विभिन्न चरणों में होती है। पहले चरण में धातु की बाहरी सतह पर ऑक्सीजन का भौतिक संपर्क (adsorbtion) होता है। उच्च ताप पर ऑक्सीकरण की प्रक्रिया एक विशेष चरण में होती है, जिसमें धातु की सतह पर ऑक्साइड की मोटी परत बनती है। इस परत की मोटाई के आधार पर इसे दो भागों में बांटा जाता है- 300 नेनो मीटर से पतली परत को झिल्ली (film) एवं 300 नेनो मीटर से मोटी परत को छिलका (Scale) नाम से जाना जाता है। स्केल या छिलका सामान्यत; उच्चतर ताप पर बनता है।

गुणों के आधार पर स्केल को भी दो वर्गों में बांटा जाता है :-

(क) संरक्षक परत : यह परत ऑक्सीजन को धातु के वास्तविक स्तर पर पहुंचने से रोकती है और एक संरक्षक आवरण के रूप में काम करती है।

(ख) असंरक्षक परत : इस तरह की परत में धातु के आवरण में सूक्ष्म रंध्रो के कारण ऑक्सीजन सहजता से धातु के संपर्क में आ जाती है और ऑक्सीकरण में मदद करती है। इस कारण इन्हें असंरक्षक परत कहते हैं।

पिलिंग एवं बेडवर्थ (Pilling & Bedworth) ने आवरण की संरक्षकता ज्ञात करने हेतु निम्नलिखित नियम प्रदर्शित किये, जो काफी लोकप्रिय हुए।

(क) ऑक्साइड परत संरक्षक होगी, अगर ऑक्साइड (जिस धातु का ऑक्सीकरण के बारे में अनुमान लगाया जा रहा है) का आयतन धातु के आयतन से ज्यादा हो।

(ख) ऑक्साइड परत असंरक्षक होगी, अगर ऑक्साइड का आयतन धातु के आयतन से कम हो।

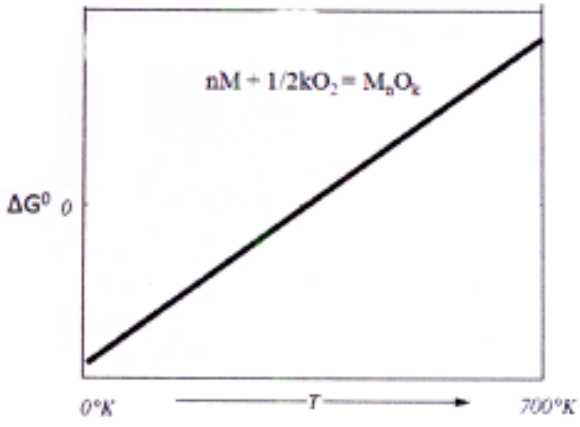

चित्र-2 : ऑक्साइड (M_nO_k) के निर्माण के लिए एलिंघम रेखाचित्र

(ग) किन्तु ध्यान रहे, अगर ऑक्साइड का आयतन धातु के आयतन से दुगुना या इससे भी ज्यादा हो, तो संपीडित दबाव उत्पन्न होता है। इस दबाव के कारण ऑक्साइड स्तर में दरारें उत्पन्न हो जाती है, जिसके फलस्वरुप ऑक्सीजन बहुत तीव्र गति से धातु सतह की ओर बेधन करता है। जिसके कारण ऑक्सीकरण की दर बहुत तीव्र हो जाती है।

चित्र-2 में ऑक्साइड (M_nO_k) के निर्माण के लिए एलिंधम रेखाचित्र (Ellingham diagram) दर्शाया गया है। ऊष्मागतिकी के नियमानुसार एवं एलिंधम रेखाचित्र के अनुसार, जैसे-जैसे तापक्रम बढ़ता है तो ऑक्साइड बनने की दर कम होनी चाहिये परंतु वास्तविक रुप में इसके विपरीत पाया जाता है, जिसकी विवेचना ऑक्सीकरण गतिकी से की जा सकती है। अतः व्यवहारिक रुप से ऑक्सीकरण गतिकी की जानकारी अति आवश्यक है।

ऑक्सीकरण गतिकी :

ऑक्सीकरण की दर को परिमाणात्मक रूप से समझने के लिए सर्वप्रथम समय के साथ धातु का उसके ऑक्साइड में रूपान्तरण की मात्रा की जानकारी आवश्यक है। ऑक्सीकरण की दर ज्ञात करने के लिए इनमें से किसी एक का चयन करना आवश्यक है- भार में अंतर, उपयोग में लाई गई ऑक्सीजन की मात्रा, ऑक्साइड परत की मोटाई, धात्विक प्रतिसरण अथवा इनका ऑक्साइड संयोजन इत्यादि। इसके बाद आंकड़ों का परीक्षण कर ऑक्सीकरण की दर (dx/dt), के नियम की स्थापना की जाती है जो इस प्रकार है

$dx/dt = f(x,t)$

जहां x ऑक्साइड परत की मोटाई, t समय, तथा f(x,t) ऑक्साइड परत की मोटाई एवं समय का एक फलन है।

(क) यदि $f(x,t) = K_1$ (जहां K_1 नियतांक है।))

इस प्रकार के निकाय में धातु या मिश्रधातु की ऑक्सीकरण दर रेखीय (linear) होती है इसका मतलब यह होता है कि धातु का क्षय एक नियत दर से अनवरत होता रहता है। ऑक्सीकरण की दर, ऑक्साइड की परत के निर्माण पर निर्भर नहीं करती है।

(ख) यदि $f(x,t) = K_p/2x$ (जहां K_p परवलियक (parabolic)दर नियतांक है।)

इस प्रकार के निकाय में धातु या मिश्रधातु की ऑक्सीकरण दर परवलयिक होती है। जैसे-जैसे ऑक्साइड परत की मोटाई बढ़ती है, वैसे-वैसे ऑक्सीकरण की दर कम होती जाती है। अर्थात जितनी ऑक्साइड की परत मोटी होगी उतनी ही ऑक्सीकरण की दर कम होगी।

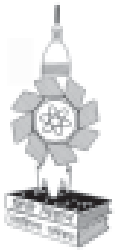

(ग) यदि $f(x,t) = K \log(t)$ (जहां K नियतांक है।)

इस प्रकार के निकाय में धातु या मिश्रधातु की ऑक्सीकरण दर लघुगणकीय (logarithmic) होती है। ऑक्सीकरण की दर समय के साथ कम होती जाती है परंतु परवलयिक ऑक्सीकरण दर से भिन्न होती है।

उच्च ताप पर ऑक्सीकरण व्यवहार :

शुद्ध धातुओं की तुलना में मिश्रधातुओं का ऑक्सीकरण काफी जटिल प्रक्रिया है। ऑक्सीकरण के दौरान बने ऑक्साइड या तो एक दूसरे में विलेय हो जाते हैं या फिर अलग अवस्था बना लेते है। किसी मिश्रधातु में कुछ तत्वों को कम मात्रा में मिश्रित किया जाता है तो उनके गुणों में असमानुपाती परिवर्तन उत्पन्न हो जाता है। जैसे-Ni-Cr मिश्रधातु में 0.1% Ce मिलाने से मिश्रित धातुओं की सांद्रता, ऑक्साइड परत एवं आव्यूह (matrix) में भिन्न होने के निम्न कारण हैं।

(क) मिश्र धातुओं के घटक तत्वों का ऑक्सीजन के साथ अलग अलग लगाव होना। उनमें से कुछ तत्वों का दूसरों के मुकाबले शीघ्र ऑक्सीकृत होना। कुछ मिश्रधातुओं में केवल एक घटकतत्व, जो कि अति सक्रिय है ऑक्सीकृत हो जाता है।

(ख) मिश्रधातु के घटकों (तत्व, आयन) की ऑक्साइडों और मिश्रधातु में विसरण गुणांकों का अलग-अलग होना।

(ग) मिश्रधातु के ऑक्सीकरण के दौरान सम्मिश्र ऑक्साइडों का बनना।

(घ) कुछ मिश्रधातुओं के घटकों का परत के बाहर ऑक्सीकृत होना, जो कि धातु और परत के अंतरफलक पर होता है।

आन्तरिक ऑक्सीकरण :

मिश्रधातु के मैट्रिक्स के अंदर मिश्रित तत्वों के ऑक्सीकरण को आंतरिक ऑक्सीकरण कहा जाता है। आंतरिक ऑक्सीकरण या तो किसी ऑक्साइड की उपस्थिति में होता है या फिर असंरक्षक परत की अनुपस्थिति के कारण होता है। आंतरिक ऑक्सीकरण की प्रक्रिया को अंतस्थ ऑक्सीजन के धातु में विसरण, तथा धातु सतह से नीचे ऑक्साइडों के नाभिकीकरण और ऑक्साइड कणों की वृद्धि के आधार पर समझाया जा सकता है। आंतरिक ऑक्सीकरण होने के लिए निम्न शर्तें आवश्यक है-

(क) मिश्रित तत्वों का ऑक्सीजन के प्रति लगाव, मैट्रिक्स धातु की तुलना में अधिक होना चाहिये।

(ख) मैट्रिक्स धातु में ऑक्सीजन की विसरणता मिश्रित तत्वों से अधिक होना चाहिए।

ऑक्साइड संरचना का ऑक्सीकरण प्रक्रिया पर प्रभाव :

ऑक्सीकरण प्रक्रिया को पूरी तरह से समझने के लिए ऑक्साइडों की संरचना को भलीभाँति जानना आवश्यक है। कुछ प्रमुख ऑक्साइडों की संरचना का वर्गीकरण उनकी संरचना के आधार पर सारिणी-1 में दर्शाया गया है। क्रोगर एवं विंक (Kroger & Vink 1956) के अनुसार ऑक्साइडों की संरचना में दो तरह के विकार होते हैं-

(क) ऑक्सीजन की न्यूनता या धातु अधिकता अथवा (n-type) प्रकार के ऑक्साइड।

उदाहरण ZnO, ZrO_2, MgO, Al_2O_3, SiO_2 इत्यादि ।

(ख) ऑक्सीजन अधिकता अथवा धातु न्यूनता अथवा (p-type) प्रकार के ऑक्साइड।

उदाहरण : NiO, CoO, FeO, MnO, Cu_2O इत्यादि ।

इस तरह के ऑक्साइडों में मिश्रित की गई धातुओं का ऑक्सीकरण पर प्रभाव :

(n-type) **प्रकार के ऑक्साइड :**

सारिणी- 1 : ऑक्साइडों की संरचना का वर्गीकरण :

अभिलाक्षणिक संरचना	ऑक्साइड
NaCl	MgO, SrO, BaO, NiO, CaO, MnO, FeO, TiO, NbO, VO
ZnS	BeO
CaF_2	ZrO_2, HfO, CeO, UO, ThO, PuO
Cu_2O	Cu_2O, Ag_2O
TiO_2	TiO_2, SnO_2, MnO_2, VO_2, MoO_2, WO_2, RuO_2, GeO_2
Al_2O_3	Al_2O_3, a-Fe_2O_3, Cr_2O_3,Ti_2O_3, V_2O_3
ReO_3	ReO_3, WO_3
परत	MoO_3

ज्यादा संयोजकता वाले धनायन (जैसे Zn में Al) को मिलाने से ऑक्सीकरण की दर कम हो जाती है।

कम संयोजकता वाले धनायन (जैसे Li में Zn) को मिलाने से ऑक्सीकरण की दर बढ़ जाती है।

p-प्रकार के ऑक्साइड :

ज्यादा संयोजकता वाले धनायन (जैसे Cr में Ni) को मिलाने से ऑक्सीकरण की दर बढ़ जाती है।

कम संयोजकता वाले धनायन (जैसे Ni मेंCr) को मिलाने से ऑक्सीकरण की दर कम हो जाती है।

ऑक्सीकरण की प्रक्रिया को समझने के लिये साधारण एवं प्रचलित प्रयोग विधि :

प्रयोग विधि को क्रमशः निम्नलिखित क्रम में किया जाता है-

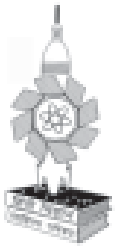

(क) 4 मिमी x 4 मिमी x 4 मिमी के करीब धातू के नमूने को बड़े भाग से काटकर निकाला जाता है। टुकड़े को भलीभांति रेती पत्र (emery paper) से रगड़ने के बाद इथाइल अल्कोहॉल से अंत में अच्छी तरह साफ कर लिया जाता है।

(ख) भट्ठी में डालने से पहले और प्रयोग के खत्म होने के बाद नमूने का सही वजन ले लिया जाता है। हर प्रयोग के लिए वजन के अंतर को चिन्हित किया जाता है।

परिवर्तित होता है। इस धातु में ऑक्सीकरण की दर रैखिक होती है जो ताप, ऑक्सीजन का आंशिक दाब तथा हवा अथवा ऑक्सीजन के प्रवाह की दर पर निर्भर करती है। ऑक्सीकरण के फलस्वरुप बननेवाले ऑक्साइड 650°C ताप पर आंशिक रुप से वाष्पीकृत होते हैं तथा 795°C ताप पर पूर्ण रूप से गल जाते हैं। इसका आपातिक ऑक्सीकरण (catastrophic oxidation) 750°C ताप पर होता है फलस्वरुप दुर्गलनीय धातु होने के बावजूद इसका उपयोग उच्च ताप पर

सारणी 2 : विभिन्न ताप पर मोलिब्डिनम धातु का ऑक्सीकरण व्यवहार

क्र.सं.	अभिक्रिया की शर्त	ऑक्सीकरण घटना	दर नियंत्रक प्रक्रिया
1.	450°C ताप के नीचे	चिपकाऊ ऑक्साइड की परत का निर्माण	ऑक्साइड के द्वारा ऑक्सीजन प्रवाह
2.	500°C से 700°C	ऑक्साइड का वाष्पीकरण	असंरक्षक ऑक्साइड परत एवं धातु अंतरफलक पर रासायनिक अभिक्रिया
3.	800°C से संक्रमण ताप तक	ऑक्साइड का गलन एवं ऑक्साइड का वाष्पीकरण	धातु अंतरफलक पर रासायनिक अभिक्रिया
4.	संक्रमण ताप के ऊपर	तीव्र दर से ऑक्साइड का वाष्पीकरण	धातु के सतह पर अनवरत ऑक्सीजन का मिलन

(ग) ये प्रक्रिया कई बार दुहराई जाती है। विभिन्न प्रयोगों का तापमान, आंशिक ऑक्सीजन दाब, हवा या ऑक्सीजन की प्रवाह दर एवं भट्ठी में नमूने को रखने का समय अलग अलग रखा जाता है। अतः वजन का अंतर भी प्रत्येक प्रयोग में अलग अलग प्राप्त होता है।

(घ) वजन का अंतर एवं पृष्ठ क्षेत्रफल का अनुपात ज्ञात किया जाता है और इसे समय के साथ रेखाचित्रण किया जाता है। अंततः रेखाचित्रण से ऑक्सीकरण की दर का नियम स्थापित किया जाता है, जैसे- रैखिक, परवलयिक अथवा लघुगणकीय।

(च) ऑक्सीकरण के फलस्वरुप बननेवाले ऑक्साइडों के गुणों को क्षय किरण विवर्तन (XRD), इलेक्ट्रॉन पुंज सूक्ष्मदर्शी (SEM, TEM) इत्यादि से जांचा जाता है।

कुछ महत्वपूर्ण धातुओं एवं मिश्रधातुओं का ऑक्सीकरण व्यवहार के उदाहरणः

(क) मोलिब्डिनम धातु का ऑक्सीकरण व्यवहार :

मोलिब्डिनम धातु का ऑक्सीकरण व्यवहार काफी जटिल होता है एवं इसकी ऑक्सीकरण प्रतिरोधक क्षमता उच्च ताप पर नहीं के बराबर होती है। मोलिब्डिनम धातु का ऑक्सीकरण व्यवहार विभिन्न घटकों के प्रभाव पर निर्भर करता है, जैसे- ताप, ऑक्सीजन का आंशिक दाब तथा गैस प्रवाह की दर इत्यादि। इन घटकों के हिसाब से ऑक्सीकरण व्यवहार नहीं किया जा सकता है। मोलिब्डिनम का विभिन्न ताप पर, ऑक्सीकरण व्यवहार सारणी 2 में दर्शाया गया है।

(ख) मोलिब्डिनम सिलिसाइड (Mo-Silicide) मिश्रधातु का ऑक्सीकरण व्यवहार :

एल्यूमिनियम और सिलिकॉन से युक्त मिश्रधातुओं जैसे- एल्यूमिनाइड एवं सिलिसाइड, की ऑक्सीकरण प्रतिरोधक क्षमता 1000°C से ऊपर भी Al_2O_3 एवं SiO_2 की प्रतिरोधक परत बनने के कारण काफी अच्छी होती है। अतः इसका उपयोग उच्च ताप पर आसानी से किया जा सकता है। प्रतिरोधक ऑक्साइडों के निर्माण में निकली मुक्त ऊर्जा का अंतर इस क्रम में होता है- $Al_2O_3 > TiO_2 > SiO_2$। अतः उष्मागतिकी के नियम से यह ज्ञात होता है कि Al_2O_3 का निर्माण इन तीनों ऑक्साइडों में सहजतम होता है।

उष्मागतिकी स्थिरता और निम्न धनायान-ऋणायन विसरणता के कारण Al_2O_3 एवं SiO_2 की परत प्रतिरोधक होती है। मोलिब्डिनम सिलिसाइड की ऑक्सीकरण की दर परवलयिक होती है, जिस कारण मोलिब्डिनम सिलिसाइड काफी ऑक्सीकरण प्रतिरोधक होती है। मोलिब्डिनम सिलिसाइड का उपयोग उच्च ताप भट्ठियों में ऊष्मीय ताप तंतु (heating element) के लिये किया जाता है। इन भट्ठियों का उपयोग 1800°C तापमान तक के प्रयोगों के लिये किया जा सकता है।

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2010 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

उच्च ऊर्जा विकिरणों के जैविक प्रभाव

- डॉ. यशवंत नाईक -
प्रक्रम विकास प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र

विलीयम राँजन द्वारा क्ष-किरणों की खोज के साथ ही उच्चऊर्जा विकिरणों के उपयोग स्वास्थ्य एवं उद्योगों में होने लगे। कुछ ही समय में ये विकिरण मानव जीवन के अभिन्न अंग हो गये। उस समय उच्च ऊर्जा विकिरणों के द्वारा शरीर पर होने वाले कुप्रभावों की जानकारी का अभाव था। रेडियोधर्मी पदार्थों की खोज के लिए मेडम क्यूरी, पियरे क्यूरी को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया, किन्तु अज्ञानतावश इन्हीं रेडियोधर्मी पदार्थों के द्वारा उत्सर्जित विकिरणों के सतत उदभासन से हुए जैविक प्रभावों के कारण मैडम क्यूरी को कैंसर हो गया जो उनके मृत्यु का प्रमुख कारण बना। उच्च ऊर्जा विकिरणों के हानिकारक जैविक प्रभावों के लक्षण, त्वचा की जलन, बालों के झड़ने तथा बाद में कर्क रोग आदि के रूप में दिखे । ये लक्षण उन लोगों में अधिक थे जो इन विकिरणों के साथ कार्य करते थे। जैसे कार्य चिकित्सक, भौतिक विज्ञानी, प्राविधिकज्ञ, इत्यादि जिन्होंने पहले पहले विकिरणों का उपयोग किया।

समय के साथ उच्च ऊर्जा विकिरणों के उपयोग चिकित्सा तथा उद्योगों में होने लगे। इनके उपयोग से जहां एक ओर स्वास्थ्य विकार जानने व उपचार पद्धति को निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण जानकारी मिल रही थी वहीं दूसरी ओर यह जानकारी उद्योगों में अधिक मुनाफा दे रही थी । इससे इन क्षेत्रों में उच्च ऊर्जा विकिरणों की भागीदारी बढ़ गयी। किन्तु प्रश्न उठा कि उच्च ऊर्जा विकिरणों के प्रभाव में सतत कार्य करने वाले तकनीशियन तथा कर्मचारियों को अकारण उदभासन से उनके स्वास्थ्य पर होने वाले हानिकारक प्रभावों से कैसे बचाया जाय?

अतः विकिरणों के जैविक प्रभावों के अध्ययन किये गये व इनके आधार पर मानदण्ड स्थापित किये गये। ताकि इन उच्च ऊर्जा विकिरणों का लाभकारी उपयोग सावधानीपूर्वक किया जा सके। इन मानदंडों में विकिरण के उपयोग से होने वाले स्वास्थ्य लाभ तथा हानियों के अध्ययन से एक संतुलित व्यवस्था तैयार की गई। उच्च ऊर्जा विकिरणों के हानिकारक परिणामों को देखकर उनका जोखिम मूल्यांकन भी किया गया व उसी आधार पर उनके उपयोग पर बल दिया गया। इन मानदंडों को बनाने में प्रयुक्त जोखिम सिद्धांत को चित्र-1 में दर्शाया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जनसामान्य पर विकिरण के प्रभाव से होने वाले जैविक प्रभाव विकिरण की मात्रा पर निर्भर करते हैं। ये प्रभाव निम्नानुसार हो सकते हैं;

1) विकिरण उदभासन से मृत्यु,
2) विकिरण उदभासन से अनुवांशिक विकृतियां
3) जीवनकाल में कमी,
4) जीवन शक्ति में शिथिलता आना व प्रजनन शक्ति में कमी

मनुष्य के पूर्ण जीवनकाल में विकिरण उदगमन के कारण उत्पन्न विकृतियां, विकिरण उदगमन की मात्रा व दर पर निर्भर करती है। अगर विकिरण उदगमन एक सप्ताह में 0.01 Sv से कम हो तो उत्पन्न होने वाले हानिकारक प्रभावों की प्रायिकता (संभावना) रेखीय अनुपात में बढ़ती है। यहां विकिरण उदभासन को मापने की इकाई सीवर्ट Sv है। इस मात्रा दर से अधिक विकिरण उदभासन पर विकृति उत्पन्न होने की प्रायिकता तेजी से बढ़ती है। यह भी देखा गया है कि विकिरण उदगमन की मात्रा दर एक निश्चित मान से कम हो तो इन विकिरणों के द्वारा किसी प्रकार के जैविक प्रभाव होने की संभावना नगण्य होती है, जैसा कि चित्र-1 में दर्शाया गया है। वैसे विकिरण उदगमन की मात्रा दर कम होने से उसके प्रभाव से उत्पन्न विकृतियों के बारे में निश्चितता से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इस प्रकार के विभिन्न रोगियों में देखे गए लक्षण भिन्न भिन्न थे। किन्तु यह देखा गया है कि विकिरण की मात्रा तथा उदगमन की मात्रा

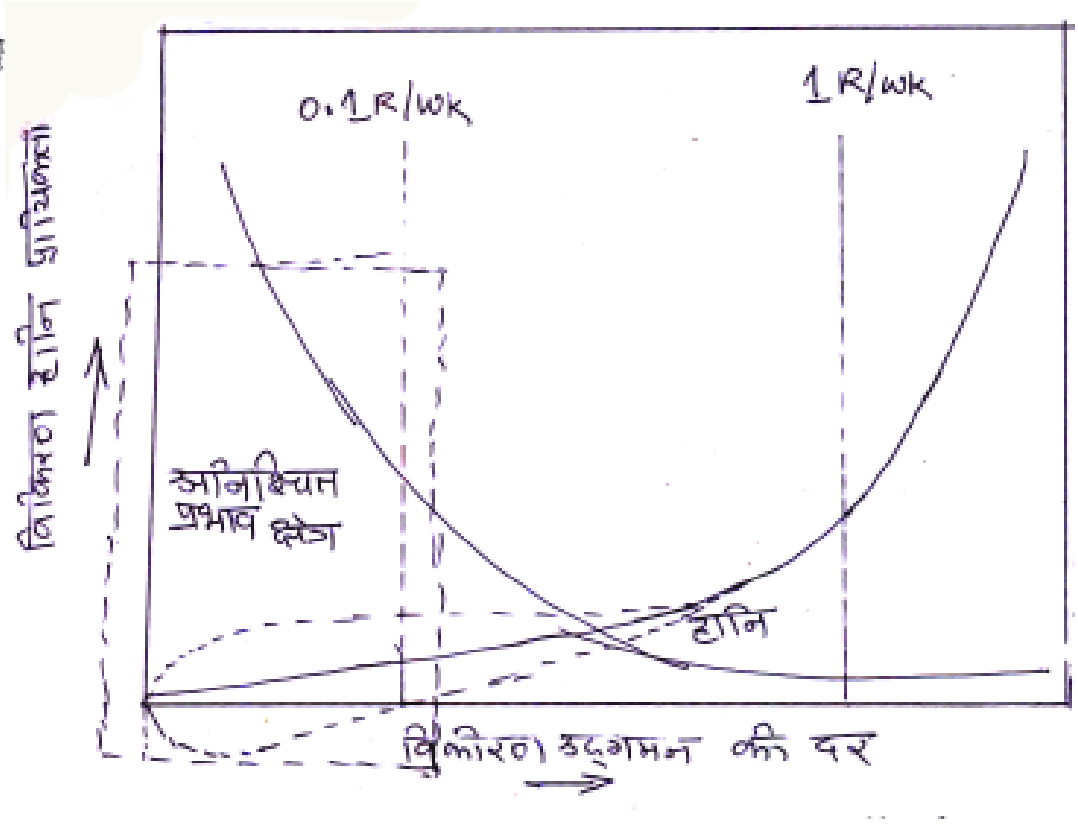

चित्र -1 : उच्च ऊर्जा विकिरण के परिवेश में रहनें के बाद शरीर पर होने वाले प्रभाव।

दर अधिक होने पर दिखने वाले लक्षणों का प्रारूप एकदम साफ होता है।

आजकल विभिन्न उच्च ऊर्जा विकिरण स्रोतों का उपयोग चिकित्सा तथा उद्योगों में हो रहा है। यह प्राकृतिक विकिरण स्रोत तथा कृत्रिम रेडियो समस्थानिकों के उपयोग से संभव हो रहा है। इन रेडियो समस्थानिकों की जानकारी तालिका-1 में दी गई है। इनमें से कम अर्धायु वाले रेडियो समस्थानिकों का उपयोग शरीर के विभिन्न अवयवों के चित्रण तथा शरीर में निरंतर चलने वाली जैव रसायन क्रियाओं के अध्ययन के लिए किया जाता है। किसी रोगी पर इस प्रकार के विकिरण उदभासन से पूर्व उस लाभकर्ता को इस विकिरण चिकित्सा की उपयुक्त जानकारी देने का दायित्व चिकित्सा केंद्र का होता है। जानकारी के आधार पर रोगी स्वयं यह सुनिश्चित कर सके कि विकिरण चिकित्सा से होने वाले दुष्परिणामों की तुलना में उसे अधिक स्वास्थ्य लाभ होगा। इस प्रकार की चिकित्सा के बाद रोगी के शरीर में प्रयुक्त रेडियो समस्थानिक कुछ समय तक रहते हैं तथा निरंतर विकिरण उत्सर्जित करते रहते हैं। अतः चिकित्सा के तुरंत बाद इस प्रकार के रोगियों को अन्य लोगों व रोगियों से दूर सुरक्षित कक्ष में रखा जाता है। विकिरण की मात्रा कम होने पर ही उसे अस्पताल से अवकाश मिलता है।

उच्च ऊर्जा विकिरणों के प्रभाव से होने वाले जैविक परिवर्तन विकिरणों के प्रभाव से उत्पन्न आयनीकरण के कारण होते हैं। इस प्रकार का आयनीकरण उच्च तापमान विद्युत अपघटन निर्मुक्ति या विद्युत चुंबकीय विकिरण के प्रभाव से उत्पन्न होता है। शरीर में आयनीकरण उत्पन्न करने वाले नाभिकीय विकिरण स्रोत दो प्रकार के हो सकते हैं;

विद्युत चुंबकीय विकिरण

इस श्रेणी में क्ष-किरण, गामा विकिरण इत्यादि आते हैं।

कणिकीय विकिरण

इस श्रेणी में आने वाले विकिरण हैं α (अल्फा), β(बीटा), β^+ (पाजीट्रान), प्रोटॉन, न्यूट्रॉन इत्यादि।

याद रहे भिन्न भिन्न विकिरण स्रोतों से प्राप्त विकिरण उदभासन के कारण होने वाले प्रभाव भी भिन्न भिन्न होंगे। इस प्रकार का विकिरण उदभासन दो प्रकार के विकिरण स्रोतों, कृत्रिम व प्राकृतिक से हो सकता है। इन स्रोतों की जानकारी तालिका-1 में दी गई है।

विकिरण के प्रभाव से उत्पन्न जैविक प्रभाव कई प्रकार

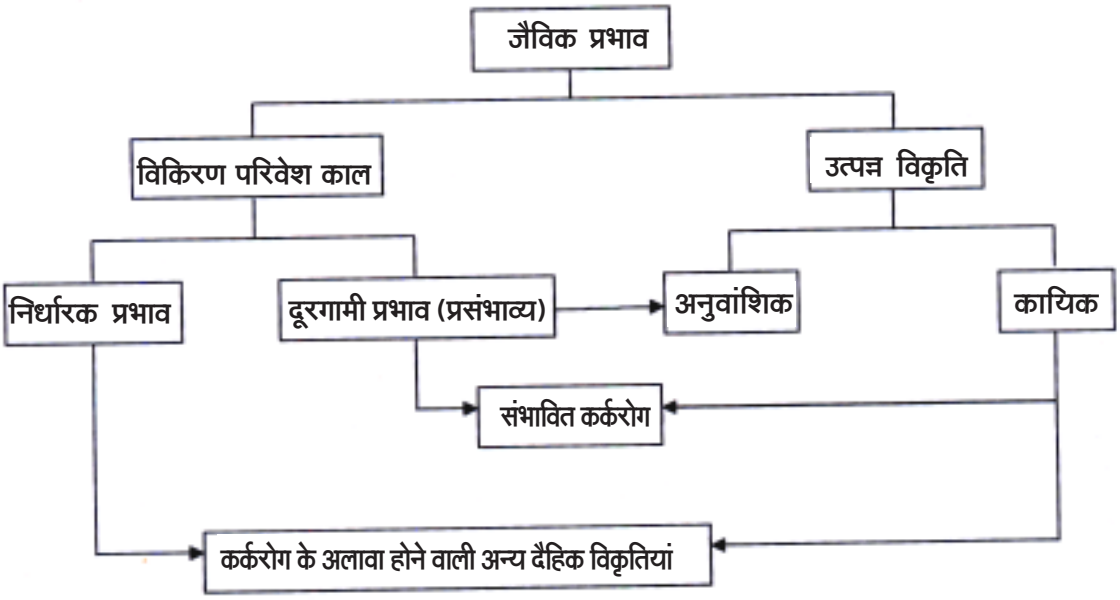

चित्र - 2 : उच्च ऊर्जा विकिरण के परिवेश में रहनें पर जैविक क्रियाओं द्वारा शरीर में होने वाले विभिन्न प्रभाव

के हो सकते हैं। विकिरण द्वारा होने वाले प्रभावों को चित्र-2 में दर्शाया गया है। इन प्रभावों का आधार विकिरण की मात्रा, काल व मात्रा दर पर निर्भर करता है।

चिकित्सा पद्धति में प्रयुक्त विकिरण स्रोतों से होने वाले प्रभाव अनुवांशिक भी होते हैं अतः इन्हें प्रसंभाव्य विकार कह सकते हैं। जिन विकारों के बारे में निश्चितता से नहीं कहा जा सकता वे अप्रसंभाव्य विकिरण प्रभाव की श्रेणी में आते हैं।

प्रसंभाव्य विकिरण प्रभावों को उत्पन्न करने के लिए विकिरण की एक निश्चित मात्रा मिलना आवश्यक होता है जिसे दिवसीय विकिरण मात्रा कहते हैं। इस दिवसीय मात्रा से ऊपर विकिरण मिलने पर होने वाले दुष्प्रभाव की प्रायिकता भी रेखीय अनुपात में बढ़ने लगती है।

विकिरण के परिवेश में आने के कारण होनेवाले जैविक प्रभाव दो प्रकार के होते हैंः

1. प्रत्यक्ष 2. अप्रत्यक्ष

प्रत्यक्ष प्रभाव

विकिरण जब जैविक तंतु पर सीधे केंद्रित होते हैं तो कोशिका के अणु आयनीकृत हो जाते हैं। कोशिकाओं में विद्यमान रसायन, जीवाणु प्रोटीन, आरएनए (RNA) तथा डी.एन.ए.(DNA) विकिरणों के प्रति अत्यंत सुग्राही होते हैं। डी.एन.ए. के अणु विकिरण द्वारा उदभाषिद होने पर एकल अथवा द्वितीयक अणुओं के द्वारा लिपटे हुए गुणसूत्र विच्छेद बना सकते हैं।

अप्रत्यक्ष विकिरण आघात

विकिरण के प्रभाव से होने वाले प्रभावों को प्रत्यक्ष सिद्धांत से समझना कठिन है। यह पर्याप्त भी नहीं है। अतः अप्रत्यक्ष सिद्धांत बनाया गया है जिसके आधार पर इन प्रभावों को समझा जा सकता है। हमारे शरीर में लगभग 60% से अधिक पानी होता है। जो विकिरण को सर्वाधिक मात्रा में अवशोषित करता है। विकिरण के अवशोषण के पश्चात पानी में स्वतंत्र मूलक बनते हैं। ये मूलक कोशिकाओं के अंदर विद्यमान होते हैं तथा वहां पर विद्यमान जैविक रसायनों (आर.एन.ए, डी. एन.ए इत्यादि,) के साथ रासायनिक क्रिया करते हैं व कोशिका में रासायनिक बदलाव उत्पन्न हो जाते हैं जो कि जैविक विकृति उत्पन्न करते हैं. क्ष-किरणों के अवशोषण के उपरांत पानी में दो तरह के स्वतंत्र मूलक बनते हैं

$H_2O \rightarrow H + OH$

पानी में आक्सीजन अधिक मात्रा में होने पर अन्य मूलक भी बनते हैंः

$H + O_2 \rightarrow HO_2$ (अस्थाई)

$HO_2 + HO_2 \rightarrow H_2O_2 + O_2$

प्रतिआक्सीकारक की उपस्थिति में उपरोक्त रासायनिक

क्रिया नहीं होती है। यह देखा गया है कि पदार्थ में कम रेखीय क्षिपण गुणांक वाले विकिरण (जैसे क्ष-किरण, गामा विकिरण, ब्रेमस्ट्रहलंग विकिरण) अप्रत्यक्ष रासायनिक अभिक्रियाओं के द्वारा कोशिका में जैविक क्षति पहुंचाते हैं। उसी प्रकार दुसरी और अधिक क्षिपण गुणांक वाले विकिरण (जैसे अल्फा, बीटा) प्रत्यक्ष आयनीकरण उत्पन्न करते हैं जिससे डी.एन.ए, आर.एन.ए. जैसे जैव रसायन विखंडित हो जाते हैं तथा जैविक विकृति पैदा करते हैं जिसकी मरम्मत करना मुश्किल हो जाता है। चित्र-3 में यह दर्शाया गया है कि विकिरण के प्रभाव से उतकों में किस प्रकार जैविक हानि पहुंचती है।

विकिरणों के प्रभाव उन कोशिकाओं में भी फैलते हैं जिन पर विकिरण की प्रत्यक्ष बौछार तो नहीं होती किंतु जो विकिरण से प्रभावित कोशिकाओं के निकट होती हैं। ये प्रभाव लंबे समय बाद उत्पन्न होते हैं तथा दो प्रकार के होते हैं, जिन्हें द्वितीयक तथा अनुवांशिक प्रभाव कहते हैं। जब विकिरण शरीर से गुजरते हैं तो वे अपनी राह में आयी कोशिकाओं में विकृति उत्पन्न करते है, जो कोशिका विकिरण की राह में नही आती वह प्रभावित नहीं होती है। किंतु जब प्रभावित कोशिकाएं इन निकटस्थ तथा स्वस्थ कोशिकाओं के संपर्क में आती हैं, अपनी विकृति से इन्हें भी ग्रसित करती हैं। इस प्रकार के द्वितीयक प्रभावों का अध्ययन हम विकिरण द्वारा अपनी राह में छोड़ी आयनीकरण छाप से नहीं समझ सकते। अगर हम उच्च ऊर्जा विकिरणों के प्रभाव में रही कुछ कोशिकाओं को शरीर से निकालकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसी शरीर में कृत्रिम रुप से रखें तो यह देखने में आता है कि ये ग्रसित कोशिकाएं नयी जगह पर भी निकटस्थ कोशिकाओं में विकृति उत्पन्न करती है। यह विकृति मुख्यतः डी.एन.ए. के अणुओं की संरचना में बदलाव के कारण होती हैं। इस प्रकार के प्रभाव विकिरण ग्रसित कोशिका तथा निकटस्थ स्वस्थ कोशिका के बीच जैव रासायनिक क्रिया के द्वारा होते हैं। इसी प्रकार ये नयी ग्रसित कोशिकाएं अपनी निकटस्थ कोशिकाओं में विकिरण से उत्पन्न प्राथमिक विकृतियों को फैलाती हैं। समय के साथ

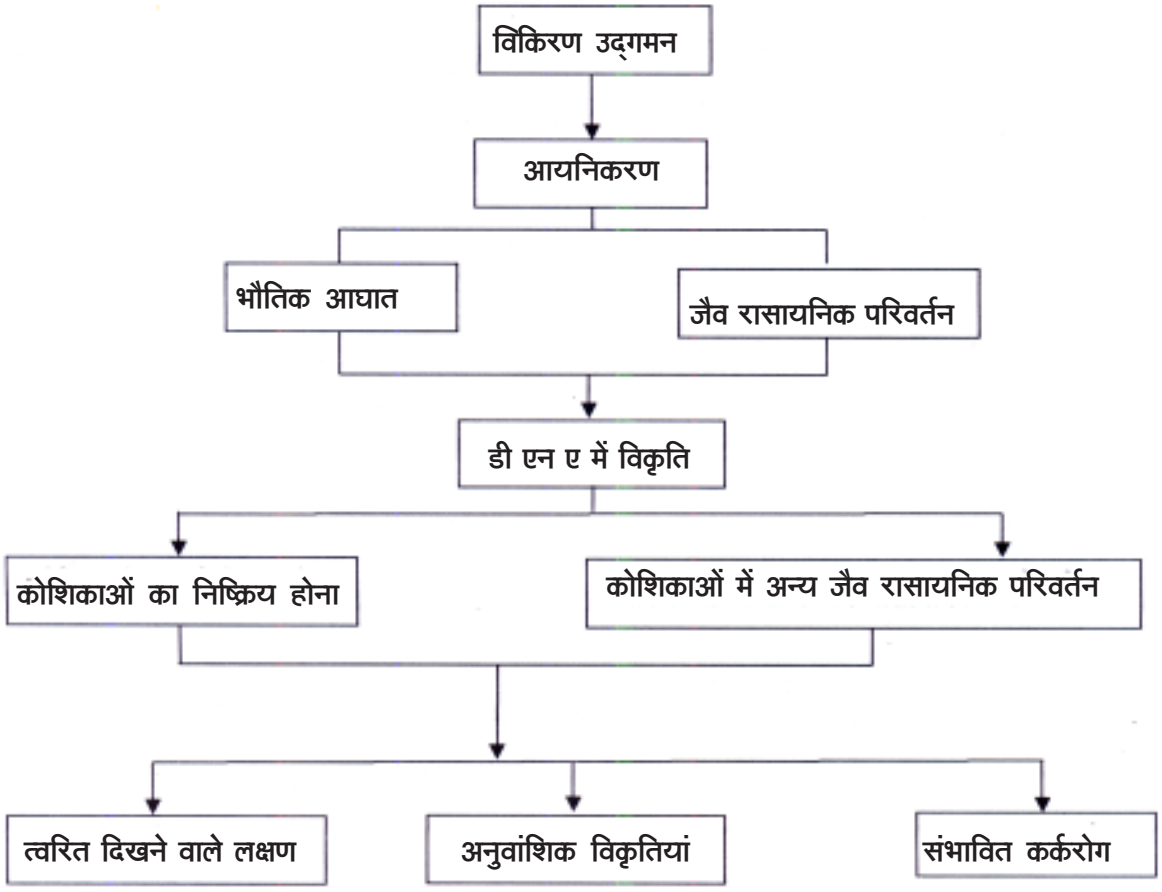

चित्र -3 : उच्च ऊर्जा विकिरण के उदगमन होने पर शरीर में होने वाली अंतर कोशिकीय जैव क्रियाएं

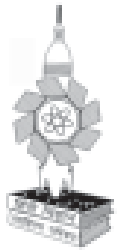

यह विकराल रुप धारण कर कर्करोग का रुप ले लेती हैं। इस प्रकार के द्वितीयक प्रभाव उच्च ऊर्जा विकिरण तथा उच्च रेखीय क्षिपण गुणांक वाले विकिरणों द्वारा अधिक होते हैं। ध्यान रहे द्वितीय प्रभाव कम रेखीय क्षिपण गुणांक वाले विकिरणों के प्रभाव से भी उत्पन्न हो सकते है।

विकिरणों से उत्पन्न प्रभाव, उनके घटकों के घटक गुणधर्मों पर निर्भर करते हैं।

विभिन्न उच्च ऊर्जा विकिरणों का रेखीय क्षिपण गुणांक अलग-अलग होता है, अतः वे शरीर में अलग-अलग लंबाई तय करते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि अल्फा विकिरणों का रेखीय अवशोषण गुणांक अधिक होता है, अतः वे शरीर में कम दूरी तय करते हैं तथा अपनी संपूर्ण ऊर्जा इसी दूरी में खर्च कर देते हैं। अतः उनके द्वारा उत्पन्न आघात अधिक तीव्रता के होते हैं। समान गतिज ऊर्जा के गामा या क्ष किरणों की परास अधिक होने के कारण उनकी ऊर्जा का क्षरण भी धीरे धीरे होता है। अतः ग़ामा विकिरणों से होने वाली क्षति α विकिरणों की तुलना में कम होती है।

विकिरण द्वारा शरीर पर उद्भासन किस प्रकार हुआ है तथा अवशोषित विकिरण की मात्रा कितनी है यह तय करता है कि विकिरण द्वारा उत्पन्न घाव कितना गंभीर होगा।

विकिरण उदभासन की मात्रा दर

ध्यान रहे उच्च ऊर्जा विकिरण का अधिक मात्रा में उदभासन कम समय के लिए होने पर भी जैविक विकृति अत्यंत गंभीर होती है। बनिस्वत उसके जब विकिरण उद्भासन की तीव्रता की दर कम हो तथा वह लंबे समय तक मिला हो। जैसा कि हम जानते हैं शरीर में उतकों की मरम्मत सदैव होती रहती है तथा विकिरण से कोशिकाओं को होने वाली क्षति क़ी दर इस मरम्मत होने की दर से कम होने पर विकिरण द्वारा उत्पन्न विकृति ठीक होने की उम्मीद बनी रहती है। किन्तु विकिरण परवेश में लगातार बने रहने पर गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

आंतरिक या बाहरी विकिरण उदभासन

कई प्रकार के रेडियो समस्थानिकों से टंकित रेडियो औषधियों का प्रयोग शरीर के विभिन्न अंगों के चित्रण के लिए होते हैं। ऐसी अवस्था में शरीर में ले जाये गये रेडियो समस्थानिकों द्वारा उत्सर्जित विकिरण की बौछार आंतरिक स्रोत के रुप में होती है। कई बार नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रों या खदानों में कार्यरत कर्मचारी द्वारा पूर्ण विकिरण सुरक्षा के साथ कार्य करने के बावजूद कुछ रेडियोधर्मी पदार्थ उनके शरीर में प्रविष्ठ हो जाते हैं। वैसे शरीर में अनावश्यक पदार्थों के प्रविष्ठ होने पर शरीर उनका प्राकृतिक रुप से परित्याग कर देता है किंतु विकिरण उत्सर्जित करने वाले ये पदार्थ शरीर में हानि पहुंचा सकते हैं। अतः इनके शीघ्र निष्कासन के लिए विधियां खोजी गई है। कई रेडियो धर्मी पदार्थ शरीर के विशिष्ट भाग में जाकर सांद्रित होते हैं। रेडियोधर्मी पदार्थों के इसी विशिष्ट गुण का उपयोग कर शरीर के विभिन्न अंगों का रेडियो चित्रण भी किया जाता है। विकिरण औषध के रुप में प्रयुक्त इन रेडियो धर्मी पदार्थों का तुरंत निष्कासन संभव होता है तथा प्रयुक्त समस्थानिक की अर्धायु भी कम होती है। अतः चिकित्सा में होने वाले लाभों की तुलना में विकिरण द्वारा होने वाली हानि नगण्य होती है। चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले ऐसे ही कुछ रेडियो समस्थानिकों की जानकारी तालिका-3 में दी गई है। इस प्रकार विकिरण द्वारा होने वाली स्वास्थ हानि की तीव्रता इस बात पर भी निर्भर करती है कि शरीर के किस अंग में विकिरण की बाधा हुई है।

कोशिकाओं की विकिरण सुग्राहिता : यह देखा गया है कि शरीर के सभी अंगों में विद्यमान कोशिकाओं को विकिरण से हानि पहुंचती है। स्वस्थ कोशिकाओं तथा कर्करोग से ग्रसित कोशिकाओं की विकिरण के प्रति सुग्राहिता भिन्न-भिन्न होती है। यह अंतर उनके ध्रुवीकरण चक्र में असमानता होने के कारण होता है। यह देखा गया है कि विकिरण के प्रति संवेदनशीलता कोशिका के विभाजन गति तथा कोशिकीय परिपक्वता पर निर्भर करती है। रक्त कोशिकाएं विकिरण के प्रति अत्यंत सुग्राही होती हैं। किंतु मांसपेशियों तथा न्युरान उच्च ऊर्जा विकिरणों के प्रति कम सुग्राही होते है। अतः उन्हें कम हानि पहुंचती है। सामान्यतः कोशिका का नाभिक विकिरण उदभासन के प्रति अधिक संवेदनशील होता है जबकि कोशिकीय द्रव्य कम।

विकिरण के प्रभावों का अध्ययन : हिरोशिमा तथा नागासाकी में परमाणु बमों के विस्फोट के बाद वहां की सामान्य जनता को भयंकर परिणाम भोगने पड़े। विकिरणों के दुष्परिणामों की उचित जानकारी न होने के कारण उस क्षेत्र का एक बड़ा हिस्सा परमाणु विभिषीका के फल आज भी भोग रहा है।

हाल में हुए चैर्नोबिल परमाणु बिजली घर हादसे के दौरान फैले विकिरण अनावरण के प्रभावों के द्वारा विकिरणों के जैविक प्रभावों के अध्ययन में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल की गई। इन्हीं को आधार मान कर विकिरणों के अनुप्रयोगों के लिए कठोर मानदंड अपनाए गये।

चूंकि अल्प तीव्रता के विकिरण परिवेश में रहने पर होनेवाले परिणामों या जैविक परिवर्तनों में अनिश्चितता बनी रहती है। अतः इस प्रकार के प्रभावों का अध्ययन करना कठिन होता है।

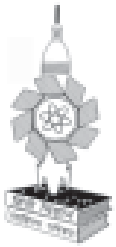

अधिक मात्रा में विकिरण मिलने के कारण होने वाले आघात व उसके लक्षण चंद मिनटों में या कुछ घंटों के बाद ही दिखने लगते हैं। अतः उच्च ऊर्जा विकिरणों के साथ चिकित्सा कार्यों में संलग्न लोगों को 1.5 ग्रे (Gy,ग्रे यह आयनीकारक विकिरणों की मात्रा को मापने की इकाई है और इसका मान 1 जूल/किग्रा.है) या इससे अधिक मात्रा में विकिरण मिलने पर होने वाले जैविक प्रभावों की जानकारी व उसके द्वारा उत्पन्न लक्षणों की जानकारी आवश्यक हो जाती है।

विकिरण उदगमन की मात्रा आधारित विभिन्न विकिरण मात्रा निदर्श : विकिरण के प्रभावों या परिवेश में रहने पर शरीर से उदगमित विकिरण की मात्रा को आधार मान कर विभिन्न निदर्श तैयार किए गए हैं। ये निदर्श पूर्णतया गणितीय आधार पर विभिन्न परमाणु विभिषिकाओं के दौरान प्राप्त आंकड़ों का उपयोग कर बनाये गये हैं। इन विकसित निदर्शों का उपयोग कर विकिरण के अनावरण में रहने के बाद होने वाले दुष्परिणामों का पूर्वानुमान आसानी से लगाया जा सकता है। ये निदर्श भिन्न भिन्न प्रारंभिक अभिग्रहणों के आधार पर होने वाले विकिरण आघात का पूर्वानुमान लगाते हैं।

रेखीय निदर्श : चित्र-4 अ में एक रेखीय निदर्श दर्शाया गया है। इस निदर्श में पूर्वानुमान लगाने के लिए यह प्रारंभिक अभिग्रहण माना गया है कि किरणों से होने वाले जैविक आघात की तीव्रता विकिरण अवशोषण की मात्रा के साथ रेखीय अनुपात में बढ़ती है। इसी निदर्श का उपयोग विकिरणों के अनुप्रयोगों के लिए बनाये गये बचाव नियमों व अनुप्रयोग विधियों के दौरान किया जाता है, ताकि विकिरणों के प्रयोगों के लिये बनी विधि व मानदंड अत्यंत सुरक्षित हो तथा विकिरण अनुप्रयोगों के दौरान किसी असामयिक हानि की संभावना न रहे।

दिवसीय निदर्श : जैसा कि चित्र-4 से स्पष्ट होता है, इस निदर्श को प्रयोग करने के लिये यह आधार माना गया है कि अगर विकिरण उदगमन की मात्रा एक निश्चित संख्या से कम हो तो ऐसी स्थिति में विकिरण के कोई विपरीत परिणाम जैविक तंत्र पर नहीं होते। इस विकिरण मात्रा को दिवसीय विकिरण मात्रा कहते हैं। दिवसीय मात्रा से अधिक विकिरण होने पर विकिरण के द्वारा दुष्परिणाम होने की प्रायीकता रेखीय अनुपात में बढ़ती है। अतः इस प्रतिरुप के अनुसार यह निष्कर्ष निकलता है कि कोशिकीय हानि होने के लिए आवश्यक मात्रा एकत्र होना आवश्यक है।

हार्मेसिस निदर्श : जैसा कि चित्र-4 में दर्शाया गया है जैविक तंत्र में विकिरण के प्रभावी से होने वाले परिणाम द्विआयामी होते हैं। विकिरण अवशोषण की मात्रा कम होने पर विकिरणों के स्वास्थ्य पर जैविक प्रभाव सकारात्मक होते हैं। हानिकारक परिणाम तभी देखे जाते हैं जब विकिरण की मात्रा दिवसीय मात्रा से अधिक हो। इस प्रतिरुप से यह स्पष्ट होता है कि प्राप्त विकिरण की मात्रा कम होने पर यह कोशिकाओं को स्वस्थ बनाये रखता है तथा उसे संक्रमण होने से बचाता है। अतः इस प्रकार डी.एन.ए. स्वतः भी विकिरण के कुप्रभाव से बच जाता है।

उच्च ऊर्जा विकिरण उदगमन द्वारा तात्कालिक दिखनेवाले जैविक लक्षण : जीवों पर अत्याधिक विकिरण बौछार होने पर जैविक दुष्परिणामों के लक्षण तुरंत दिखने लगते हैं। इन लक्षणों को कई वैज्ञानिक चिकित्सा मापकों द्वारा देखा जा सकता है। इस प्रकार इन दिखने वाले तात्कालिक लक्षणों को निम्न चार विभागों में बांटा गया है।

अ. तीव्र ऊर्जा विकिरण परिवेश में आने पर : विकिरण आघात होने के 48 घंटों के अंदर ये लक्षण अपना असर

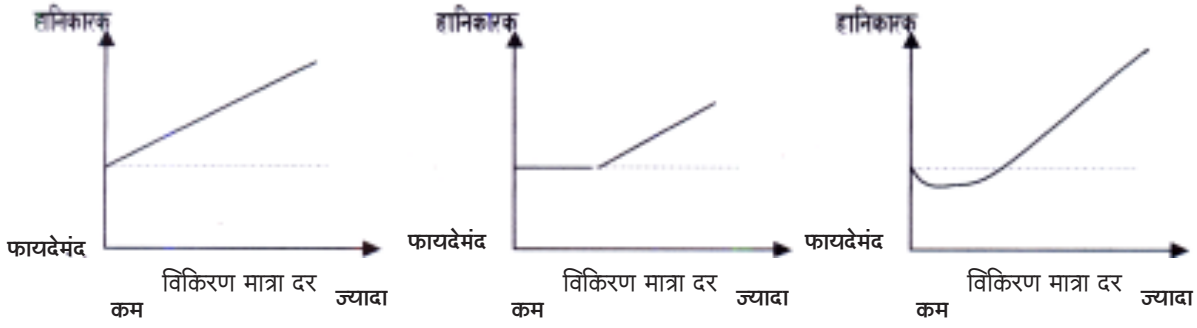

अ-रेखीय निदर्श **ब - दिवसीय निदर्श** **स-हार्मेसिस निदर्श**

चित्र -4 : उच्च ऊर्जा विकिरण उदगमन प्रभावों के अध्ययन के लिए मात्रा दर पर आधारित तीन निदर्श

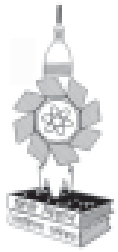

दिखाते हैं। ये लक्षण निम्न हैं : क्षुब्धाभाव, चक्कर आना, बेहोशी उल्टी-दस्त लगना।

ब. विकिरण प्रभाव का अव्यक्त काल : विकिरण आघात होने के बाद पांच सप्ताह (तात्कालिक लक्षण दिखने के बाद) ये लक्षण विलुप्त हो जाते हैं।

स. विकिरण प्रभाव का व्यक्त काल : यह विकिरण आघात होने के 6 से 8 सप्ताह बाद का समय है, क्योंकि इस समय में विलुप्त हुए विकिरण आघात के लक्षण पुनः दिखते हैं। इस काल के दौरान दिखने वाले लक्षण विकिरण की मात्रा पर निर्भर करते हैं।

द. पुनः प्राप्ति का काल : उपरोक्त प्रभावों से अगर रोगी बच जाता है तो रोगी कुछ ही महिनों में पुनः पूर्ण स्वस्थ हो जाता है, जैसा कि विकिरण थेरेपी के बाद रोगी को देखा जाता है।

यह देखा गया है कि अगर किसी व्यक्ति को मिली विकिरण की मात्रा 1 ग्रे से अधिक किंतु 2 ग्रे कम हो तो उस व्यक्ति को चार घंटों में ही उल्टी-दस्त होने लगते हैं। किंतु प्राप्त विकिरण की मात्रा 1 ग्रे से कम हो तो व्यक्ति में इस प्रकार के कोई लक्षण नहीं दिखते। विकिरण की मात्रा अत्याधिक होने पर स्वास्थ्य पूर्ण रुप से बिगड़ सकता है। किसी विशिष्ट अंग पर किरणन होने पर विकिरण के द्वारा होने वाले घावों को निम्न भागों में बांटा जा सकता है।

विकिरण शिथिलन : तीव्र विकिरण के प्रभाव में रहने के बाद होने वाले इस रोग के लक्षण साधारण भी हो सकते हैं। जैसे भूख न लगना, थकान महसूस करना आदि। कुछ लक्षण चिकित्सीय परिक्षणों के बाद ही मिलते हैं। ये लक्षण अत्यंत घातक भी हो सकते हैं। ये लक्षण विकिरण उदगमन के 5 या 10 मिनट बाद ही दिखने लगते हैं। विकिरण की मात्रा 10 ग्रे या अधिक होने पर इस प्रकार के लक्षण दिखते हैं। लक्षणों में थकान, पसीना छूटना, बुखार आना, उदासीनता महसूस करना, रक्तचाप कम होना इत्यादि शामिल है। विकिरण की मात्रा 2 ग्रे से कम होने पर इस प्रकार के लक्षण देरी से दिखते हैं तथा ऐसे प्रकरणों में 100% तक फिर से स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है।

अस्थिमज्जा विकार संलक्षण : विकिरण उदगमग की मात्रा 1.5 - 2 ग्रे (Gy) से अधिक होने पर अस्थि मज्जा विकार देखने में आते हैं। अगर मात्रा 4 ग्रे तक पहुंच जाए तो यह लक्षण लगभग तीन सप्ताह बाद ही दिखने लगते हैं। ये लक्षण रोग पूर्व के लक्षणों समान होते है। तीन सप्ताह तक चिकित्सीय परिक्षणों में इस रोग के लक्षण नहीं दिखते किंतु एनिमियां, रुधीरांक बढ़ना, रक्तचाप बढ़ना थकान महसूस करना व भूख न लगना रोग के पूर्व लक्षण दिखते हैं। इस दौरान छाले भी पड़ सकते हैं व चक्कर आ सकते हैं, तथा संक्रमण होने की प्रबल संभावनाएं होती हैं। विकिरण मात्रा 4 से 8 ग्रे (Gy) तक होने पर ये लक्षण तुरंत दिखते हैं व अस्थिमज्जा संलक्षण दिखता है। ये लक्षण तीव्र विकिरण उदगमन के बाद तुरंत देखने में आते हैं। ये अत्यंत पीडादायक होते हैं किंतु समय के साथ पीड़ा कम होने लगती है। इस सीमा में विकिरण मिलने से रोगी की जान भी जा सकती है।

दस्त-उल्टी होना : जब विकिरण उदगमन की मात्रा 6-10 ग्रे के बीच हो जाए तो अस्थिमज्जा विकार के साथ जुलाब लगना प्रमुख है। 6 से 10 ग्रे (Gy) विकिरण उदगमन की मात्रा होने पर रोगी में अन्य कई प्रकार के रोग लक्षण भी देखे जा सकते हैं जैसे भूख न लगना, उदासीनता महसूस करना, बेहोशी या उल्टी-दस्त लगना। इस सीमा में विकिरण अपघात (उद्भासन) होने के 2 से 8 घंटों के अंतर में उपरोक्त लक्षण दिखने लगते हैं। जो कि कुछ दिनों में मिट जाते हैं व बाद में पुनः रोगी को उच्च रक्तचाप, उल्टी, दस्त, क्षुधाभाव, चक्कर, बेहोशी हो सकती है। तथा रोगी तुरंत विभिन्न प्रकार के संक्रमणों का शिकार होने लगता है। किरणन दो या तीन सप्ताह तक चले तो तीव्र उल्टी दस्त होने लगते हैं। शरीर में रक्त का बहाव अवरूद्ध होकर धीरे-धीरे रुक जाता है। कुछ समय बाद पीड़ित की मौत होने की संभावनाएं बढ़ जाती है।

केंद्रीय तंत्रकीय तंत्र में गड़बड़ उत्पन्न होगा : यह देखा गया है कि शरीर का केंद्रिय तंत्रकीय तंत्र विकिरणों के प्रति शरीर के अन्य अवयवों की तुलना में उदासीन होता है। किन्तु विकिरण की मात्रा 10 ग्रे (Gy) से अधिक होने पर उसे भी हानि हो सकती है। दिखने वाले रोग लक्षणों में चक्कर आना, बेहोशी के हालात पैदा होना, उल्टी-दस्त होना, मिर्गी आना, लसिकाणुओं का समाप्त होना शामिल है। इस अवस्था में पूर्वानुमान कठिन हो जाता है। तथा कुछ ही दिनों में पीड़ित व्यक्ति की मौत हो सकती है।

शरीर के विभिन्न अंगों पर तीव्र विकिरण उद्भासन किरणन किया जाता है तो स्वाभाविक ही है कि उस अंग से जुड़ी कोशिकाओं पर विकिरण के दुष्परिणाम होंगे। कितु विकिरण थेरपी के दौरान केंसर कोशिकाओं को किरणन द्वारा निष्क्रिय करने से सकारात्मक प्रभाव देखने को मिलते हैं। किरणन के अन्य दुष्परिणामों में त्वचा का कर्क रोग, तथा घाव होना प्रमुख हैं। ये परिणाम तुरंत देखे जा सकते हैं।

इसी प्रकार कुछ प्रभाव देरी से देखे जाते हैं। ये प्रायः उन लोगों में देखे जाते हैं, जो विकिरण युक्त वातावरण में लंबे समय तक रहते हैं तथा विकिरण की मात्रा दर कम होती

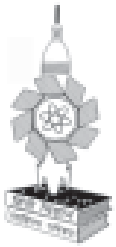

है। इन प्रभावों के बारे में निश्चितता से कुछ नहीं कहा जा सकता तथा आज तक इन प्रभावों के बारे में स्पष्ट चित्र उभरकर नहीं आया है। ऐसे कई प्रतिवेदन देखने को मिलते हैं जो हमें विकिरणों के दुष्परिणामों के प्रति सचेत करते हैं। किंतु इसके विपरीत ऐसे प्रतिवेदन भी मिलते हैं जो कम मात्रा दर के विकिरण उदगमन को हानिकारक न बताते हुए उन्हें स्वास्थ्य के लिए उपयोगी सिद्ध करते हैं।

विकिरण उदभासन के कारण कर्करोग

उच्च ऊर्जा विकिरण के वातावरण में रहने पर सबसे बड़ा खतरा कर्क रोग होने का होता है। क्ष-किरण तथा अन्य उच्च ऊर्जा नाभिकीय विकिरण जैसे गामा, बीटा, पॉजीट्रान इत्यादि की खोज के समय से ही यह मान्यता बन चुकी थी कि आयनिक विकिरणों के प्रभाव से कर्करोग होता है। जिन ऊतकों की कोशिकाओं में कोशिकीय गुणन तीव्र गति से होता है उनमें विकिरण के प्रभाव से कर्क रोग होने की संभावना अधिक होती है। क्योंकि ये कोशिकाएं विकिरण के प्रति अत्यंत सुग्राही होती है। अतः इन ऊतकों में कर्करोग फैलता है। विकिरण के प्रभाव से होने वाले इस कैंसर के लक्षण विकिरण उदभासन के कई वर्षो बाद दिखते हैं। विकिरण के प्रभाव से होने वाले रक्त कैंसर का लक्षण लगभग पांच वर्षों में दिखते है, किंतु अन्य अंगों में होनेवाली कर्करोग की गाठों को लगभग दस वर्षों बाद देखा जा सकता है। इस प्रकार के रक्त कैंसर व अन्य गाठों के लक्षण विकिरण बाधा से त्रस्त रोगियों में देखे गये हैं। इस प्रकार की गांठ मस्तिष्क में भी हो सकती है, जिसे हम दिमागी गांठ के नाम से जानते हैं। ये सभी कर्करोग उच्च ऊर्जा विकिरण की अत्यधिक मात्रा से होते हैं। विकिरण की मात्रा कम होने पर कर्करोग के लक्षण अन्य कारणों से होनेवाले कर्करोग के मरीजों की तुलना में कम देखे गये है। होल्म तथा उनके साथियों ने इस प्रकार के आमापन लगभग 6000 मरीजों पर किए। जिन्होंने अपने अवटू ग्रंथी का चित्रण ^{131}। (यह आयोडिन तत्व का एक समस्थानिक है जिसका रेडियो, चिकित्सा में उपयोग होता है) टंकित जैव रसायनों के उपयोग से शरीर में किया था। उन्होंने पाया कि इनमें से किसी भी मरीज ने अवटू ग्रंथी में विकिरण के द्वारा कर्करोग होने के लक्षण नहीं मिले। इन रोगियों में लगभग 200 बच्चे थे। इस प्रकार के उपचार के बाद में अधिक रेडियो धर्मिता के प्रयोग से किये गये किंतु बीस वर्ष के अंतराल तक इन रोगियों में कर्करोग होने के लक्षण लगभग उसी प्रकार के थे जो सामान्य रोगियों में देखे गये तथा जिनके उपचार सर्जिकल विधि द्वारा किये गये थे। हाल में किये गये अन्य प्रयोगों में यह देखा गया है कि इस प्रकार के विकिरण उपचार से रोगी को स्वास्थ्य लाभ होता है।

एक सामान्य मनुष्य के शरीर में डी.एन.ए. अणु के लगभग 2,40,000 इकाई तक उत्परिवर्तन तथा सुधार होता रहता है। किन्तु उम्र अधिक होने पर यह गति कम हो जाती है। अतः कर्क रोग होने की संभावनाएं बढ़ जाती है। यह देखा गया है कि ऐसे प्रौढ़ व्यक्तियों को 2 ग्रे (Gy) तक की विकिरण मात्रा देने पर उत्परिवर्तन की गति 4000 इकाई बढ़ जाती है। किंतु सुधार इस मात्रा में नहीं होता। विकिरण की मात्रा कम होने पर यह सुधार (0.2 Gy) केवल 400 युनिट जोडती है। अतः विकिरण की मात्रा अधिक होने पर प्रौढ़ व्यक्तियों में विकिरण बाधा से डी.एन.ए. सुधार होने की गति लगभग थम जाती है।

वंशानुगत दिखने वाले विकिरण प्रभाव

विकिरण उदभासन से होनेवाले ये जैविक विसंगतियां, वर्णधारक तथा जननधारक उत्परिवर्तन की संरचना तथा इनकी संख्या में बदलाव होने के कारण दिखती हैं जो कि विकिरण के प्रभाव से होती हैं। इस विकिरण बाधा के लक्षणों की तीव्रता निम्न बातों पर निर्भर करती है।

पीड़ित जनन कोशिका

विकिरण बाधा से पीडित जैव कोशिका परिपक्व हो तो उसमें विकिरण आघात से हुई चोट का सुधार संभव होता है, किंतु अगर विकिरण बाधा के समय जनन कोशिका प्रौढावस्था में हो तो उसके सुधार होने की संभावना नगण्य होती है।

विकिरण उदभासन की मात्रा दर

जैसे ही शरीर में विकिरण बाधा से कोशिकाएं क्षतिग्रस्त होने लगती है उसी समय शरीर में प्राकृतिक कोशिका सुधार की जैव रसायनिक क्रियाएं बल पकड़ने लगती है व घाव ठीक हो जाता है। किंतु अगर विकिरण बाधा से होने वाले जैविक क्षति मात्रा उत्परिवर्तन की दर से अधिक हो तब सुधार संभव नहीं होता तथा क्षति भी गंभीर होती है। कम मात्रा दर होने पर उत्परिवर्तन की दर कम होती है अतः क्षति सुधार संभव हो जाता है।

विकिरण मात्रा के खंडों में होना

वर्णधारक तथा जननधारक उत्परिवर्तनों में बदलाव इस बात पर भी निर्भर करते है कि कुल विकिरण की मात्रा कितने खंडों में मिली है। विकिरण उद्भासन खंडों में होने पर कोशिकाओं के स्थानांतरण की संख्या तो बढ़ती है उनके उत्परिवर्तन की गति में विशेष परिवर्तन नहीं दिखता।

गर्भाधान तथा विकिरण उद्भासन

महिलाओं में विकिरण उद्भासन के लगभग सात सप्ताह

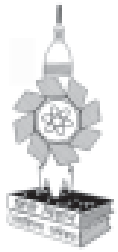

के बाद गर्भ धारण होने पर उत्परिवर्तन की दर अत्यंत कम होती है। किंतु यही सात सप्ताह से कम होने पर अधिक होती है।

गर्भ में पल रहे बच्चे पर विकिरण के प्रभाव

ध्यान रहे भ्रुणावस्था के दौरान गर्भ विकिरण के प्रति अत्यंत सुग्राही होता है। इस काल में विकिरण उद्‌भासन होने पर विकिरण के द्वारा होने वाले हानिकारक प्रभावों में संवृद्धि अवरोधन, नवजात मृत्यु तथा भ्रूण की विकृतरचना प्रमुख है, जिससे जन्म लेने वाले बालक में विकृतियां जन्मजात होती है। इस प्रकार के लक्षणों की तीव्रता अन्य प्रभावों के समान ही विकिरण की मात्रा, दर तथा उद्‌भासन समय पर निर्भर करती है। गर्भधारण के बाद गर्भाशय में पल रहे बालक पर समय के साथ होनेवाले दूष्परिणामों को तालिका २ में दिखाया गया है।

गर्भधारण के बाद यदि किसी स्त्री पर ^{१३१}इ के उपयोग से अवटू ग्रंथी का चित्रण किया जाये तो यह ^{१३१}इ प्लेसंटा को पार कर गर्भ में पल रहे बालक की अवटू ग्रंथी में भी जाएगा व सांद्रित होगा, जिसके परिणाम जन्म लेने वाले बालक पर गंभीर हो सकते हैं। अतः गर्भावस्था के दौरान इस प्रकार के विकिरण मापन व उपचार से दूर रहना ठीक होता है।

आंखों में मोतिया बिंदु विकार :

सतत या उदात्त विकिरण उद्‌भासन के बाद मोतिया बिंदु होने की प्रबल आशंका होती है। आंख में विद्यमान प्राकृतिक लेन्स के तंतुओं में विकिरण अवशोषण के कारण अव्यवस्था उत्पन्न होती है। ये मुख्यतः अणुओं के विखंडन अथवा उनके बीच उत्पन्न होने वाले सह संयोजक बंधन के कारण होते हैं। आंखों पर सभी प्रकार के विकिरणों का प्रभाव समान नहीं होता। न्यूट्रान के प्रभाव से मोतिया बिंदु जल्द हो जाता है। ऐसे लक्षण विकिरण बाधा होने के उपरांत कम से कम 2 से 5 ग्रे की उद्‌गामित मात्रा से हो सकते है। किंतु किरणन खंडों में होकर कुछ अंतराल से होता है, तो यह 10 ग्रे तक जा सकता है। यह विपत्ति विकिरण बाधा के बाद लगभग 2 से 10 वर्षो बाद भी उत्पन्न हो सकती है।

अल्पावटूता

मस्तिष्क, गर्दन तथा अवटू ग्रंथी की विकिरण थेरपी के दौरान अवटू ग्रंथी को विकिरण की एक बहुत बड़ी मात्रा झेलनी पड़ती है। इस प्रकार के मापन में ^{131}I का उपयोग किया जाता है तथा उपचार के दौरान प्रयुक्त मात्रा 10 से 40 ग्रे तक की मात्रा दी जाती है। अतः कुछ महिनों या वर्षो बाद अवटू ग्रंथी अल्पवटूता की शिकार हो जाती है। अगर विकिरण की मात्रा केवल 10 से 20 ग्रे प्रयुक्त की जाए तो अल्पवटूता होने की संभावना बढ़ जाती है। मात्रा 500 ग्रे तक पहुंच जाए तो अवटू निष्क्रिय हो जाता है।

एनिमीया

जिन व्यक्तियों को उदात्त विकिरण बाधा होती है, वे अविकरित एनिमीया के शिकार भी हो सकते हैं। इस प्रकार से होने वाले प्रभावों में अस्थिमज्जा का एनिमीया भी होता है। यह उच्च उर्जा विकिरणों के अवशोषण के कारण स्टेम कोशिकाओं के टूटने से होता है। अगर अस्थिमज्जा का 10% भाग भी इस प्रभाव से बचा रहे तो तुरंत मृत्यु होने की प्रायिकता 50% तक कम हो सकती है।

चिकित्सा पद्धति के दौरान विकिरण उद्‌भासन

देखा गया है कि छाती के क्ष-चित्रण के दौरान व्यक्ति को 0.2 mSv के बराबर विकिरण उद्‌भासन होता है।

नाभिकीय औषधियों के प्रयोग से मापन के दौरान संपूर्ण शरीर को लगभग 3 mSv का विकिरण अवशोषण होता है। यह प्राकृतिक कॉस्मिक विकिरण स्रोतों से मिलने वाली विकिरण मात्रा से कम होता है। अतः इन चिकित्सा प्रणालियों से लाभ अवश्य होते हैं। ध्यान रहे इस प्रकार के मापन में अगर पोजिट्रॉन उत्सर्जित करने वाले समस्थानिक प्रयुक्त हो तो विकिरण अवशोषण की मात्रा भी अधिक होती है। यह उनकी अर्धायु कम होने के बावजूद होता है। पोजीट्रॉन उत्सर्जित टोमोग्राफी में प्रयुक्त समस्थानिकों का उत्पादन साइक्लोट्रान में होता है तथा इन समस्थानिकों के उत्पादन से जुड़े वैज्ञानिकों को अन्य कर्मचारियों की तुलना में ज्यादा विकिरण उद्‌भासन होता है।

विभिन्न नाभिकीय चिकित्सा पद्धतियों में विकिरण न केवल संक्रमित किंतु स्वस्थ कोशिकाओं को भी प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ, अवटू ग्रंथी में कर्क रोग होने पर उसके निदान के लिए ^{131}I का उपयोग किया जाता है। यह अस्थिमज्जा के विकार उत्पन्न कर अवसाद पैदा कर सकता है।

विकिरण के प्रभाव से स्वास्थ्य पर होने वाले कुछ सकारात्मक प्रभाव

विभिन्न विकिरणों का हमारे स्वास्थ पर होने वाले प्रभावों का अध्ययन एक महत्वपूर्ण विषय है। इसी प्रकार के अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि उच्च ऊर्जा विकिरणों से स्वास्थ्य पर कुछ सकारात्मक प्रभाव भी देखे गए हैं। अधिक पृष्ठभूमि विकिरण क्षेत्र के प्रभाव में रहने वाले कम लोगों में ही कर्करोग के लक्षण देखे गए हैं। जहां नैसर्गिक विकिरणों की मात्रा कम है, वहां रहने वाले लोगों में इस रोग के लक्षण ज्यादा मिलते हैं। इस प्रकार के सर्वेक्षण भारत, चीन, आस्ट्रेलिया आदि में किए गए हैं।

तालिका - 1 -अ : चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले β तथा γ विकिरण उत्सर्जित करने वाले रेडियो समस्थानिक व उनके गुणधर्म

रेडियो समस्थानिक	विकिरण की उर्जा (MeV)	अर्धायु	3.7×10^7 Bq (1 mci) स्त्रोत से 1 सेमी दुरी पर प्राप्त होने वाला Exposure dose R/hr	HVL (cm Pb) लेड की अर्ध परत मोटाई
^{226}Ra	0.24-2.2	1622 Y	8.25	1.4
^{60}Co	1.17,1.33	5.26 Y	13.07	1.2
^{222}Rn	0.78	3.83 days	8.25	1.4
^{137}Cs	0.66	32 Y	3.27	0.65
^{103}Pd	0.02-0.023	17 days	1.48	--
^{198}Au	0.42	2.70 days	2.38	0.33
^{192}Ir	0.29	74.2 days	4.64	0.32
^{125}I	0.03	60.2 days	1.42	0.0025 (tissue 2 cms)
^{131}I	β: 0.3-0.8 γ- 0.36	8.05 days	2.21	0.3
^{90}Y	β: 2.3 γ- 1.74	64 hrs	NA	
^{89}Sr	β: 1.46 γ- 0.91	52.7 days	NA	
^{90}Sr	β: 0.55	28.1 days	NA	
^{32}P	β: 0.70	14.3 days	NA	

तालिका - 1 -ब : चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले कुछ पॉजिट्रान उत्सर्जित करने वाले रेडियो समस्थानिक व उनके नाभिकीय गुणधर्म

पॉजिट्रांन उत्सर्जित करने वाला रेडियो समस्थानकि	अर्धायु (min)	उत्पाद	उत्सर्जित पॉजिट्रान की सर्वाधिक ऊर्जा (MeV)	सर्वाधिक रेखिय परास (mm)	औसत रेखिय परास (mm)
^{11}C	20.4	^{11}B	0.963	5.00	0.32
^{13}N	9.9	^{13}C	1.192	5.42	1.43
^{15}O	2.1	^{15}N	1.719	8.21	1.49
^{18}F	110	^{18}O	0.645	2.42	0.21
^{68}Ga	68	^{68}Zn	1.885	9.08	1.91
^{82}Rb	1.3	^{82}Kr	3.354	15.67	2.64

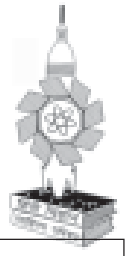

तालिका - 2 : गर्भ में पल रहे बालक पर विकिरण उद्‌भासन के कारण होने वाले प्रभाव

भ्रूण की अवधि (दिनों में)	संभावित विकृति प्रभाव
1-9	भ्रूण की संभावित मृत्यु
10-12	भ्रूण के मृत्यु की संभावित तो कम होती है
13-56	विकृतियों के साथ भ्रूण का विकास
57-112	अत्यंत तीव्र मानसिक विकार के साथ जन्म (केंद्रिय तंत्रकीय तंत्र में विकृतियां)
113-175	मानसिक विकार होने की संभावना कम होती है।
175 दिनों के बाद	केंद्रिय तंत्रकीय तंत्र में विकृतियां होने की कम संभावनाएं होती है।

तालिका - 3 : सामान्य स्रोतों से प्राप्त होने वाले अवशोषित विकिरण की मात्रा

स्रोत	अवशोषित विकिरण की मात्रा (mSv)
क्ष-चित्रण विधियों से	
क्ष-चित्रण छाति का क्ष-चित्रण	0.1- 0.2
धमनियों का पाइलोग्राम	2.5
एक मेमोग्राफी	4
गालब्लेडर का क्ष-चित्रण	5.3
दांतों का वितृत क्ष-चित्रण	9
मस्तिष्क की टोमोग्राफी	58
बेरियम चित्र	80
नाभिकीय औषधियों के प्रयोग से	
^{99m}Tc-DTPA से श्वास पश्वास का अध्ययन	0.15-0.25
^{99m}Tc-MAA से फेफडों का चित्रण	1.1
^{99m}Tc-MDP से हड्डियों का चित्रण	3.6
अन्य प्राकतिक स्रोतों से	
दो घंटे की हवाई उडान के दौरान	0.05
हवा में स्थित प्राकृतिक रोडियोधर्मी पदार्थों से	0.09
ब्रम्हांडीय विकिरणों के द्वारा	0.36
पानी पीनें से	0.05
शरीर में विद्यमान रोडियोधर्मी पदार्थों से	0.39

सारांश में विकिरणों के द्वारा जैविक हानि दो प्रकारों से यानि प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष विधियों द्वारा होती है। विकिरण बाधा की तीव्रता जैविक चक्र की गति के दौरान विभिन्न कालखंडों पर भी निर्भर करती है। साथ ही यह पीड़ित व्यक्ति की उम्र पर भी निर्भर करती है। विकिरण की मात्रा कम होने पर यह विकिरण उद्‌भासन स्वास्थ के लिए लाभकारी हो सकते हैं। विकिरण के चिकित्सा प्रयोगों में अत्यंत सावधानी बरतनी चाहिए। गर्भवती महिलाओं पर इस प्रकार के मापन संभवतः नहीं किए जाने चाहिए।

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2010 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

जिनसिंग-एक अतुल्य वनस्पति

- सुभाष चन्द्र -
पादप रसायन विभाग
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ- 226001

एक बहुत पुराना घोष है 'जल ही जीवन है' परंतु इसी के समरुप अपने आप में पूर्ण एक अन्य घोष है 'वनस्पति ही जीवन है।' हमारे जीवन का आधार वनस्पतियां हैं जो हमारी मूलभूत आवश्यकताओं जैसे-रोटी, कपड़ा और मकान के अतिरिक्त अन्य सभी आवश्यकतायें भी पूरी करती हैं। वनस्पतियों के महत्व एवं उपयोग से आदि काल से सभी परिचित हैं। प्रत्येक वनस्पति का अपना अलग महत्व एवं उपयोगिता है। जैसे-अन्न, फल, फूल, सब्जियां, लकड़ी, तेल, रेशा, गोंद, सुगंधित तेल, रंग, औषधियां आदि। इसी वानस्पतिक संसार का एक अति महत्वपूर्ण एवं औषधि निर्माण के लिए उपयोगी सदस्य है जिनसिंग, जो कि स्वास्थ्य रक्षक होने के साथ स्वास्थ्य वर्धक भी है।

जिनसिंग का इतिहास लगभग 5000 वर्ष पुराना है। इसकी खोज सर्व प्रथम चीन में मंचुरिया के पर्वतों से खाद्य पदार्थ के रूप में हुई थी तथा इस पौधे का नामकरण 'रेनशेन' (जिसका अर्थ है 'मनुष्य के आकार जैसी जड़) भी चीन द्वारा किया गया था। तत्पश्चात ग्रीक के प्रसिद्ध वनस्पतिविद् कार्ल एन्टन मेयर द्वारा इसका नाम 'पैनाकोस' रखा गया जिसका अर्थ है 'सर्वरोग हर'। जिनसिंग का लिखित रूप में प्राचीनतम प्रमाण चियेन हेन राजवंश के समय (33-48 B.C.) में मिलता है। तत्पश्चात् 500 A.D. के लगभग शेन नंग की पुस्तक **'शेन नंग पेन रिसाओ चिंग'** जिसका अर्थ है 'जड़ी बूटियों की पुस्तक' में भी जिनसिंग का वर्णन है। उसके उपरान्त 1596 में प्रकाशित ली.एनबिन ने अपनी पुस्तक Bencao gangmu (विनकाओं गैगंम्) में जिनसिंग का वर्णन किया है। एक अन्य विश्व विख्यात औषधीय पौधों का अभूतपूर्व ज्ञान रखनेवाले प्रो. स्टीफेन फुल्डर ने अपनी पुस्तक 'Ginsing book, The Ancient heater' में बताया है कि वेदों में भी जिनसिंग के गुणों एवं उपयोगो का वर्णन निम्न रुप में किया गया है।

"The root which is dug from the earth and strengthen the nerves, the sterength of the love, the mule, the goat, the ram more over the strength of the bull. It bestows on him. This herb will make thee so full of husty strength that thou shall when excile heat as a thing of fire"

यूरोप में जिनसिंग का प्रथम संदर्भ सन् 1613 में 'रिलेसन्स डाला ग्रान्डे मोर्नाचिया सिना' नामक पुस्तक में मिला सन् 1916 में कनाडा वासियों को चीन के लोगों द्वारा जब इसके गुणों, उपयोगों एवं मूल्य का पता चला तो उन्होंने इसकी खेती प्रारंभ कर दी। तदोपरान्त धीरे-धीरे अनेक देशों में उसकी खेती की जाने लगी।

जिनसिंग एक बहुवर्षीय पौधा है, इसकी ऊंचाई 2.0 से 2.5 फुट तक होती है। इसकी मुख्यतः 6 प्रजातियां हैं जिनके वनस्पतिक नाम, कुल, प्राप्ति स्थान एवं गुणवत्ता आदि का वर्णन तालिका 1 में किया गया है।

उपरोक्त जिनसिंग प्रजातियों में पैनेक्स जिनसिंग सी.ए. मेयर की व्यवसायिक खेती को अच्छी एवं उपयोगी होने के कारण प्राथमिकता दी जाती है। जिनसिंग के बारे में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि कृषि द्वारा उत्पादित जिनसिग जंगलों/पर्वतों में प्राकृतिक रुप में उगने वाली जिनसिंग से कम गुणवत्ता वाली मानी जाती है। इसीलिए प्राकृतिक जिनसिंग की मांग एवं मूल्य अधिक है। प्राकृतिक जिनसिंग मुख्यतः मंचुरिया (चीन), पूर्वी साइबेरिया (रुस) एवं कोरिया के पर्वतीय क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में पायी जाती थी, परंतु अधिक मांग एवं अच्छा मूल्य होने के कारण इसका इतना अधिक दोहन हुआ कि दशकों पूर्व यह बिल्कुल विलुप्त सी हो गयी

तालिका-1

प्रजाति का वनस्पतिक नाम	कुल	स्थायी नाम	प्राप्ति स्थान	गुणवत्ता
पैनेक्स क्वीनक्वीफोलियन्स	ऐरेलियेसी	अमेरिकन जिनसिंग, अंग्रेजी जिनसिंग	उ. अमेरिका, चीन, जापान, कोरिया	उत्तम
पैनेक्स जिनसिंग सी.ए.मेयर	-"-	कोरियन जिनसिंग, चाइनीज जिनसिंग, जेनशन	अमेरिका, कनाडा, एशिया	अच्छी मध्यम
पैनेक्स ट्राईफोलियस	-"-	छोटी जिनसिंग, मंगफली	एशिया, कनाडा, पूर्वी अमेरिका	मध्यम निम्न
पैनेक्स स्यूडोजिनसिंग वाल.	-"-	हिमालियन जिनसिंग, टीन ची जिनसिंग	चीन, कोरिया, जापान	मध्यम-उत्तम
पैनेक्स जैपोनिकम	-"-	जापानी जिनसिंग, चू, चीह, जेन शेन जिनसिंग	जापान	मध्यम उत्तम
पैनेक्स वियतनामेन्सिस	-"-	वियतनाम जिनसिंग	वियतनाम, जापान	मध्यम

पैनेक्स ट्राईफोलियस

पैनेक्स जिनसिंग

पैनेक्स जैपोनिकम

पैनेक्स स्यूडोजिनसिंग

पैनेक्स क्वीनक्वीफोलियस

है। इसलिए जिनसिंग की व्यवसायिक खेती चीन, कोरिया, कनाडा, अमेरिका तथा जापान में प्रमुखता से की जा रही है।

कृषि- इसके 5-6 वर्ष पुराने पौधों से सफेद बीजों को एकत्रित कर बुवाई द्वारा नर्सरी तैयार की जाती है। बीज से पौधे उगने में 15-18 महीने का समय लगता है। बीजों की बुवाई के 2 वर्ष पश्चात पौधों की रोपाई अलग क्यारियों में की जाती है। धूप एवं पानी की अधिकता जिनसिंग की फसल के लिए हानिकारक है। लगभग 5 वर्ष पश्चात जब पौधे का तना हल्के पीले रंग का हो जाय तब अगस्त-अक्टूबर के महीने में इसकी जड़ों की खुदाई की जाती है। जड़ों की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए इसके फूलों को समय-समय पर तोड़ दिया जाता है।

जिनसिंग की जड़ें दो प्रकार की होती हैं, सफेद एवं लाल।

सफेद जिनसिंग

लाल जिनसिंग

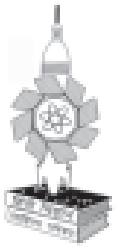

इसका कारण है इन्हें तैयार करने की अलग-अलग तकनीक। सफेद जिनसिंग छिलका रहित सूखी जड़ों को कहा जाता है जब कि लाल जिनसिंग जड़ों को वाष्प/गर्मी द्वारा सुखाकर तैयार की जाती है। लाल जिनसिंग में कवक एवं कीड़ों का प्रकोप नहीं होता है। यूरोपियन औषधि व्यवसाय में सफेद जिनसिंग को अपरिष्कृत माना जाता है जब कि लाल जिनसिंग को एशिया की परंपरागत औषधियों में उत्तम माना जाता है। चीन के पादप चिकित्सक उपरोक्त दोनों प्रकार की जिनसिंग को पूर्णतः भिन्न गुणों वाली मानते है।

रसायनिक अपघटक - जिनसिंग के महत्व एवं वृहद उपयोगी होने के कारण इसमें विद्यमान रसायनिक अपघटकों की खोज, उनका नियोजन, एवं पहचान वैज्ञानिकों ने 20वीं सदी में प्रारंभ कर दी थी। परिणाम स्वरुप इसके संपूर्ण पौधे से अनेक वर्गों के सैकड़ों महत्वपूर्ण एवं उपयोगी रसायनों की पुष्टि की जा चुकी है। जिसका संक्षिप्त वर्णन तालिका २ में दिया गया है।

तालिका-2

रसायनिक अपघटक	संख्या
सैपोनिन (जिसिनो साइड)	22
ईथर घुलन शील यौगिक	40
नाइट्रोजनयुक्त यौगिक	08
वाष्पशील यौगिक	32
कार्बोहाइड्रेट/पोलीसेक्साइड	13
ग्लाइकेन्स	09
लिपिड/वसीय अमल	56
अल्प मात्रा वाले यौगिक	09

उपरोक्त रसायनों में सबसे महत्वपूर्ण रसायन जिन्सिनोंसाइड होते हैं। जिन्सिनोसाइड में विद्यमान एग्लीकोन्स के आधार पर इन्हें तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है। 20-एस प्रोटोपैनाक्साडिओल जिनसिनोंसाइड के एग्लीकोन्स जैसेः- जिन्सिनोसाइड Rb, Rb2, Rc एवं Rd आदि। इसी प्रकार Rc, Rb एवं Rg, एग्लीकोन्स को पैनाक्सोइट्राईओल के वर्ग में रेखा गया है तथा तीसरे समूह में एक पेन्टोसाइक्लिक ट्राइटर्फिनायड (ओलिक अम्ल) को रखा गया है। जिनसिंग के पौधे में विद्यमान जिन्सिनोसाइड यौगिक की संरचना मानव हार्मोन के समान होती है। इसलिए ऐसा माना जाता है कि ये मानव हार्मोन की तरह ही हमारे शरीर में क्रिया कर इसे स्वस्थ एवं निरोगी रखते है। जिनसिंग के संपूर्ण पौधे में विद्यमान रसायनों का वर्णन **तालिका-3** में किया गया है।

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिकों ने जिनसिंग की जड़ों से विभिन्न पॉलीएसीटाइलीन जैसे-पैनाक्सीट्राइओल, पैनाक्सीनोल एवं पैनाइसीडोल रसायन भी पृथक कर इनमें विद्यमान गुणों जैसे-कोशिका विषाक्तता, विम्वाणुरोधी आदि का सफलता पूर्वक परीक्षण भी किया जा चुका है।

उपरोक्त रसायनों की रसायनिक संरचना निम्नलिखित है :-

इसकी जड़ों में विद्यमान पैनाक्जेन्स पॉलीसेकराइड मूलतः पेप्टीडोग्लाइकान होते हैं। जिनसिंग में विद्यमान रसायनों की प्रतिशत मात्रा एवं गुणवत्ता उनकी प्रजाति, प्राप्ति स्थान, भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरण के लिए अमेरिकन एवं एशियाई जिनसिंग में 8 मुख्य जिन्सिनोसाइड एवं अन्य रसायनों का संगठन बिल्कुल भिन्न है। अमेरिकन जिनसिंग में एशियाई जिनसिंग की अपेक्षा अधिक जिन्सिनोंसाइड पाये जाते हैं। उपरोक्त दोनों प्रकार की जिनसिंग में Rb जिन्सिनोसाइड समान मात्रा में पाया जाता है इसी प्रकार जिन्सिनोसाइड Rg1 की प्रतिशत मात्रा अमेरिकन जिनसिंग की तुलना में एशियाई जिनसिंग में अधिक होती है। एक अन्य जिन्सिनोंसाइड F-11 जो कि अमेरिकन जिनसिंग में पाया जाता है परंतु एशियायी जिनसिंग में बिल्कुल नहीं होता है। इसी प्रकार कोरियायी जिनसिंग में 38 जिन्सिनोंसाइड होते हैं। जब कि अमेरिकन जिनसिंग में मात्र 19 प्रकार के जिन्सिनोंसाइड पाये जाते हैं। जिनसिंग की विभिन्न प्रजातियों में निहित प्रमुख जिन्सिनोसाइड रसायनों का वर्णन निम्नलिखित है।

जापानी वैज्ञानिकों द्वारा किये गए प्रयोगों के फलस्वरुप पैनेक्स जिनसिंग सी.ए. मेयर प्रजाति के 6 वर्षीय पौधों की जड़ों में विद्यमान तत्व एवं रसायन तथा ऊतक संवर्धन द्वारा तैयार की गयी जिनसिंग की जड़ों में विद्यमान तत्वों एवं रसायनों का तुलनात्मक विवरण तालिका-4 में दिया गया है।

जिनसिंग की पत्तियों, तने एवं फलों में भी सैपोनिन (जिन्सिनोसाइड) की प्रतिशत मात्रा इसकी जड़ से प्राप्त सैपोनिन के लगभग समान होती है। इसके अतिरिक्त उससे पोली सेक्राइड ट्राईटर्पिनायड एवं फ्लेवोनायेड भी विद्यमान रहते हैं। जिनिसिंग की पत्तियों से वैज्ञानिकों ने अभी तक 30 जिन्सिनोसाइडो को पृथक कर इनकी पहचान करने के साथ यह भी ज्ञात किया है कि जिनसिंग की पैनेक्स क्वीन्क्वीफोलियम प्रजाति की जड़ों की अपेक्षा पत्तियों में जिन्सिनोसाइड की प्रतिशत मात्रा अधिक होती है। हाल ही में शेन येंग औषधि विश्वविद्यालय, शेन येंग (चीन) के वैज्ञानिक प्रो. ली जुन वू, ली बो वैंग तथा हुई युवानगाओ ने जिनसिंग

की पत्तियों से एक नये यौगिक 3β, 6α, 12β-triol-22,23,24,25,26,27 हेक्सानोर डैमारान-20 की खोज की है। परिवर्तित मौसम, भौगोलिक स्थिति, जलवायु आदि के कारण भी इसकी पत्तियों एवं फलों में जिन्सिनोसाइड की मात्रा प्रभावित होती है। एच.पी.एल.सी. द्वारा विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ है कि अमेरिकन जिनसिंग की पत्तियों में Rh1, Rg2, 20(R)-Rg, Rg3 एवं की मात्रा 4.71% तथा फलों में 5.35% होती है। जिनसिंग के पौधे के विभिन्न भागों में विद्यमान जिन्सिनोसाइड की प्रतिशत मात्रा का वर्णन तालिका - 5 से 6 में किया गया है.

हिरोशिमा विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डा. टनाका के प्रयोग एवं परिणामों के अनुसार जिनसिंग की जड़ों में जिन्सिनोसाइड की मात्रा पौधे की रोपाई के पांचवे वर्ष में

तालिका-3

पौधे का भाग	रसायनिक वर्ग	रसायनिक अपघटक
जड़	लिपिड	ट्राईग्लिसराल ट्रिलिनोलिन, ओलिगोग्लिसराइड
	प्रोटीन	पेप्टाइड, एन्जाइम
	फिनोलिक्स	कैफिक अम्ल, कैम्फिराल, वेनिलिक अम्ल, फ्लोवोनोयड, B-N-आक्जेलो-L-α, B डाईएमीनो प्रोपियोनिक अम्ल
	विटामिन	एस्कार्बिक अम्ल, थियामीन, राइबोफ्लोविन
	रेजिन	नियेसिन
	कार्बोहाइड्रेट	पोलीसेक्साइड, पैनाक्जेन्स
	सैपोनिन	स्टिरोयइल सैपोनिन (जिन्सिनोसाइड), डेमारेन प्रकार के ट्राइटर्पिनायड ग्लाइकोसाइड
	अन्य	कार्बनिक अम्ल, सुगंधित तेल, β-फार्निसीन, β- गुर्जनीन, β-बिसाब्लीन,
तना एवं पत्ती		जरमेनियम, सैपोनिन जिन्सिनोसाइड Rd, Rb2, Re, 3β, 6α, 12β, triol-22,23,24,25,26,27- हैक्सानारडैमरान- 20-one, डैमर-20(22), 24-डाईन-3, β, 6α, 12β-ट्राइओल

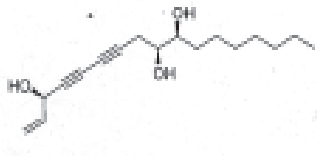

पैनाक्सीट्राइओल

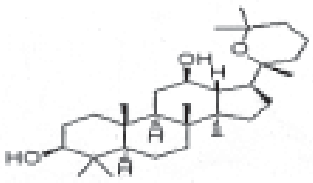

पैनाक्सीट्राइओल

पैनाक्सीट्राइनोल

कुछ प्रमुख जिन्सिनोंसाइडों की रासायनिक संरचना निम्न हैः-

तालिका-4

प्रजाति	रसायनिक वर्ग	रसायन (जिन्सिनोंसाइड)
पी. जिनसिंग सी.ए. मेयर	सैपोनिन (जिन्सिनोसाइड)	Rb1, Rc, Rg1, Rb2, Re, Rd
पी.क्वीन्क्वीफोलियम	सैपोनिन (जिन्सिनोसाइड)	Rb, Rc, Rg, Rb2, Re, Rd
पी.वियतनामेन्सिंस	ओकोटिओल के सैपोनिन	Rb1, Rc, Rg, Rb2, Re, Rd
पी.जिनसिंग	सैपोनिन	Rf, मजोनोसाइड - R_2
उत्तरी अमेरिकन जिनसिंग	जिन्सिनोंसाइड	Rb1, Re,
स्यूडो जिनसिंग	जिन्सिनोंसाइड	Rb, Rb2, Rc,
अमेरिकन जिनसिंग	स्यूडोजिन्सिनोंसाइड	F11 व अन्य सैपोनिन

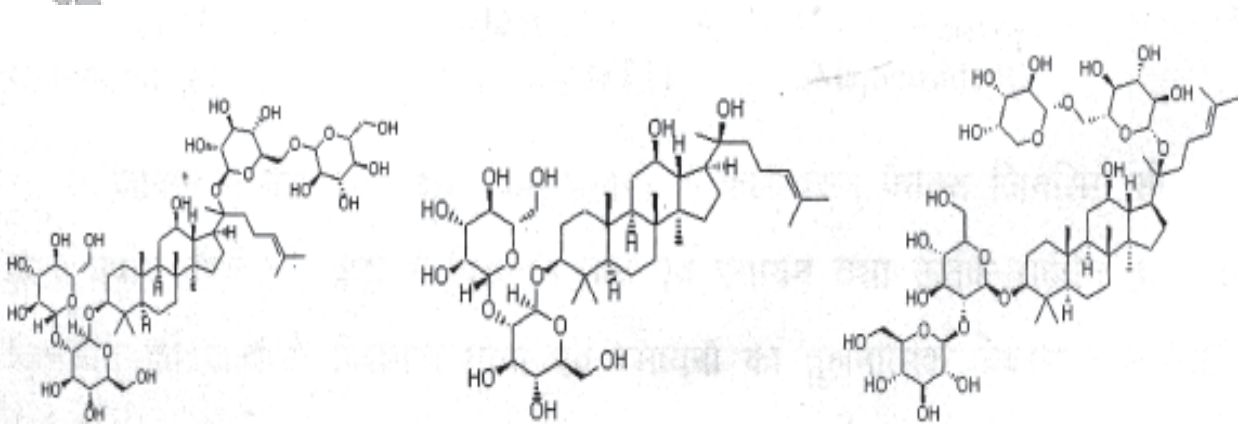

Ginsinoside Rb1 Ginsinoside Rg3 Ginsinoside Rb2

सर्वाधिक होती है।

औषधीय एवं स्वास्थ्य रक्षक गुण

जिनसिंग के गुणों के बारे में एक प्राचीन मान्यता है कि इसकी जड़ का आकार मानव आकृति के समान होने के कारण यह मनुष्य के शरीर के संपूर्ण रोगों को समाप्त करती है। ग्रीक भारतीय इसे सफेद औषधि कहते थे तथा ज्वर में इसे अदरक के रस एवं एल्कोहल के साथ मिलाकर सेवन करते थे। चिकोरी लोग इसे सिरदर्द में प्रयोग करते थे तथा रक्ताघात से बचने के लिए जिनसिंग का उपयोग तंबाकू के साथ किया जाता था। चिप्पिवा संस्कृति में यह मान्यता थी कि जिनसिंग में मृत व्यक्ति को भी जीवित करने की अदभुत क्षमता होती है। पौनी एवं सेमीनोल भारतीय इसे 'प्रेम औषधि' मानते थे, इसीलिए वे अपनी प्रेमिकाओं तथा अलग हुई पत्नियों को वापस पाने के लिए अपने शरीर एवं कपड़ों पर जिनसिंग का घोल छिड़कते थे।

वनस्पति जगत में खाद्य फसलों को छोड़कर स्वास्थ्यरक्षक एवं स्वास्थ्य वर्धक वनस्पतियों में जिनसिंग का प्रमुख स्थान है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी मांग एवं खपत ही इसके गुणों का साक्ष्य है तथापि इसके संपूर्ण पौधे में निहित औषधीय गुणों का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है।

पत्तियों एवं तने के औषधि-भेषज गुण

वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनुसंधानों के परिणाम स्वरुप जिनसिंग के पत्तियों एवं तने में निहित औषधि-भेषज गुणों का वर्णन तालिका-7 में किया गया है।

थकावट रोधी गुण

जिनसिंग की पत्तियों एवं तने के निष्कर्ष को 100-200 मिलीग्राम/किलोग्राम की मात्रा में चूहों पर अनेक प्रयोग करने पर ज्ञात हुआ कि चाइनीज जिनसिंग की पत्तियों एवं तने में विद्यमान सैपोनिन शरीर की थकावट दूर करने के साथ रक्त में लैक्टिक अम्ल की वृद्धि को रोककर गुर्दे तथा ऊर्वस्थि मांसपेशी में ग्लाइकोजन को भी कम करता है। इसके अतिरिक्त यह निष्कर्ष शरीर में प्रोटीन के संश्लेषण के साथ गुर्दे में RNA तथा मांसपेशियों के ऊतकों में अभिव्यंजन भी करता है।

अल्सर रोधी गुण

इस गुण की पुष्टि के लिए आमाशय में अधिक चोट/घाव वाले चूहों को चुना गया। जिनसिंग की पत्तियों में विद्यमान अशुद्ध पोलीसेक्साइड की 100 मिली ग्राम/किलोग्राम की मात्रा के प्रयोग के परिणाम स्वरुप चूहों के आमाशय की चोट/घाव में अत्याधिक कमी पायी गयी।

मूत्र रोधी गुण

जिनसिंग की पत्तियों एवं तने में निहित जिन्सिनोंसाइड में मूत्र रोधी गुण भी विद्यमान है। इसकी पुष्टि के लिए चूहों पर किये गये प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ कि ये जिन्सिनोंसाइड जल एवं सोडियम को सुरक्षित रखने के साथ पोटेशियम के उत्सर्जन में वृद्धि तथा मूत्र में सोडियम एवं पोटेशियम के अनुपात को कम करती है।

वृद्धावस्था रोधी गुण

इस गुण का अध्ययन चीन में वैज्ञानिकों ने जिनसिंग की पत्तियों से किया था। उसके द्वारा निर्मित उत्पाद टोगबू नंबर-1. आजकल चीन में अत्यधिक प्रचलित है। इस उत्पाद का उपयोग वहां अनेकों रोगों जैसे-वृद्धावस्था रोधी, प्रतिरक्षण क्षमता में वृद्धि, अन्तःश्रावी क्रियाओं, स्वतंत्र मूलकों का अपमार्जन तथा आतों के रोग आदि में प्रचुरता से किया जा रहा है।

जड़ के औषधि-भेषज गुण

शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता

जिनसिंग एक महत्वपूर्ण एडोप्टोजन है इसी कारण यह

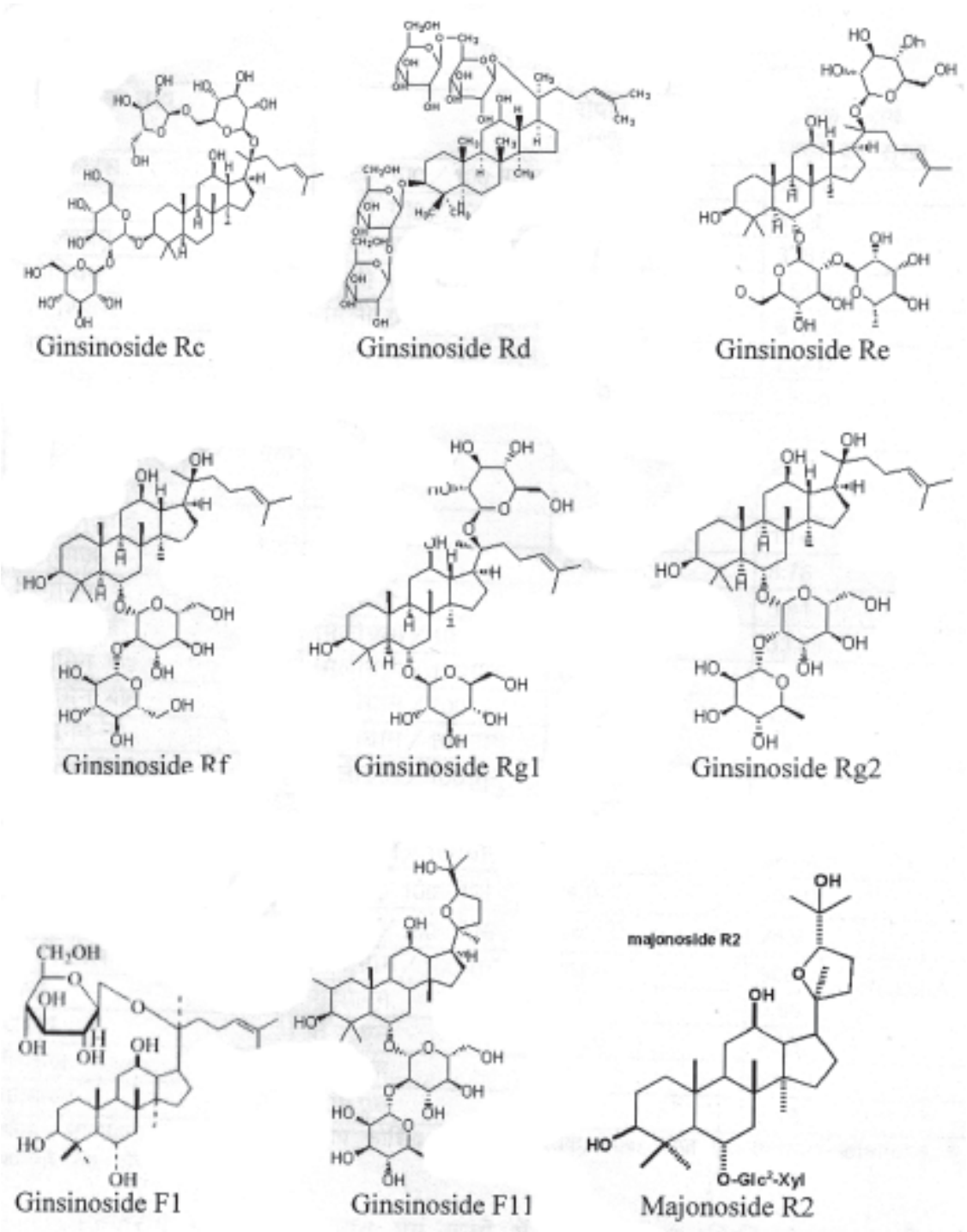

हमारे शरीर की भौतिक, रसायनिक एवं जैविक क्रियाओं को सुचारु रुप से प्रतिपादित करने के साथ शक्तिदायक एवं स्वास्थ्य को ठीक रखता है। इस संबंध में एक प्रयोग के अन्तर्गत मनुष्यों को 50/100 दिनों तक जिनसिंग की जड़ का निष्कर्षण दिया गया। परिणाम स्वरुप यह पाया गया कि इन लोगों की मानसिक क्रियाओं जैसे-सोचने की क्षमता, स्मृति, ध्यान, एकाग्रता तथा ग्रहणशक्ति आदि में वृद्धि हुई।

प्रतिरक्षण क्षमता में वृद्धि एवं सर्दी जुकाम रोधी : उपरोक्त गुण की पुष्टि के लिए 323 सर्दी, जुकाम से पीड़ित लोगों पर (जिन्हें वर्ष में 3-4 बार जुकाम होता था) प्रयोग किया गया। परिणाम स्वरुप यह ज्ञात हुआ कि जिन रोगियों को जिनसिंग की जड़ के 2 कैप्सूल प्रतिदिन 4 महीने तक औषधि के रुप में

रसायनिक तत्व	मात्रक	रोपाई द्वारा प्राप्त सूखी जड़	ऊतक संवर्धन द्वारा प्राप्त जड़ों का सूखा पाउडर
फास्फोरस	मिली ग्राम/100 ग्राम	207.0	243.0
लौह	मिली ग्राम/100 ग्राम	6.74	11.9
कैल्शियम	मिली ग्राम/100 ग्राम	545.0	378.0
सोडियम	मिली ग्राम/100 ग्राम	12.4	151.0
पोटेशियम	मिली ग्राम/100 ग्राम	1200.0	6790.0
मैग्नीशियम	मिली ग्राम/100 ग्राम	145.0	212.0
क्लोरीन	मिली ग्राम/100 ग्राम	67.0	286.0
खाद्य रेशा	प्रतिशत	21.3	27.2
जल में विलेय उपापचक पोलीसेकराइड	प्रतिशत	2.01	2.26
हेमीसंलुलोज	प्रतिशत	8.84	10.4
सेलूलोज	प्रतिशत	8.98	8.76
लिगनिन	प्रतिशत	1.47	5.81
विटामिन बी1	मिलीग्राम/100ग्राम	0.17	33.08
विटामिन बी2	मिलीग्राम/100ग्राम	0.18	2.40
विटामिन बी6	मिलीग्राम/100ग्राम	2.03	4.26
विटामिन–ई	मिलीग्राम/100ग्राम	0.8	1.4
α -टोलोफिरोल	मिलीग्राम/100ग्राम	0.8	1.4
कोलीन	प्रतिशत	0.08	0.13
नियासिन	मिलीग्राम/100ग्राम	3.90	36.04
ओलिक अम्ल	µ ग्राम/100 ग्राम	44.0	250.0
बायोटिन	µ ग्राम/100 ग्राम	9.0	24.0
इनोंसिटोल	मिलीग्राम/100ग्राम	318.0	306.0
ताबॉ	पी.पी.एम.	7.0	0.55
जस्ता	पी.पी.एम.	11.06	26.3
मैग्नीज	पी.पी.एम.	37.0	134.0
कोबाल्ट	पी.पी.एम.	0.11	0.12

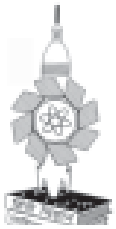

तालिका - 6

पौधे का नाम	विभिन्न जिन्सिोसाइड की प्रतिशत मात्रा								कुल योग
	Rg1	Re	Rf	Rg2	Rb1	Rc	Rb2	Rd	
पत्ती	1.078	1.524	-	-	0.184	0.736	0.553	1.113	5.188
पत्र वृन्त	0.327	0.141	-	-	-	0.190	-	0.107	0.765
तना	0.292	0.070	-	-	-	-	0.397	-	0.759
मुख्य जड़	0.379	0.153	0.092	0.023	0.342	0.190	0.131	0.038	1.348
शाखा जड़	0.406	0.668	0.203	0.090	0.850	0.738	0.434	0.143	3.532
मूल रोम	0.376	1.512	0.150	0.249	1.351	1.349	0.780	0.381	6.148

दिये गये थे उन्हें सर्दी जुकाम कम होकर वर्ष में 1 ही बार हुआ। इसके अतिरिक्त यह अधिक उम्र के लोगों में सर्दी जुकाम होने से भी रोकती। अनुसंधानों द्वारा यह भी सिद्ध हो चुका है कि जिनसिंग के उपयोग से हमारे शरीर के रक्त में प्रतिरक्षण कोशिकाओं की वृद्धि होती है, जिससे हमारा प्रतिरक्षण तंत्र अधिक सुदृढ़ हो जाता है।

शर्करा रोग रोधी : इस गुण का परीक्षण 36 मधुमेहरोगियों (जो कि इन्सुलिन नहीं लेते थे) को 100-200 मिलीग्राम की मात्रा में जिनसिंग देकर किया गया। 8 सप्ताह पश्चात उनके रक्त में शर्करा की मात्रा का स्तर कम होने के अतिरिक्त उनकी मनोदशा, शारीरिक तथा मानसिक स्थिति में भी सुधार पाया गया। इसकी केवल 200 मिलीग्राम मात्रा के सेवन से रक्त में होमोग्लोबीन की प्रतिशत मात्रा में भी वृद्धि पायी गयी।

क्रीड़ा अनुष्ठान

जिनसिंग का उपयोग सभी प्रकार के खिलाड़ियों के लिए एक सर्वोत्तम सम्पूरक सिद्ध हो चुका है। तथापि 41 लोगों पर इसका प्रयोग किया गया जिनमें कुछ लोग ऐसे थे जो नियमित व्यायाम करते थे, शेष नहीं। परिणामस्वरुप यह ज्ञात हुआ कि जिनसिंग का प्रभाव व्यायाम न करनेवाले लोगों पर अधिक तथा नियमित व्यायाम करनेवालों पर कम होता है। एक अन्य प्रयोग में 30 प्रशिक्षित खिलाड़ियों को जिनसिंग के साथ विटामिन ई मिलाकर 9 सप्ताह तक दिया गया परिणामस्वरुप उनकी वातापेक्षी क्षमता में वृद्धि पायी गयी।

सामान्य स्वास्थ्य वर्धक

जिनसिंग में विद्यमान उपरोक्त गुण के परीक्षण एवं पुष्टि के लिए 40 वर्ष से कम आयु वाले 625 लोगों को पोषक सम्पूरक तथा जिनसिंग एवं पोषक सम्पूरक का मिश्रण दिया गया। परिणाम स्वरुप यह पाया गया कि जिनसिंग एवं पोषक सम्पूरक का उपयोग करनेवालों में अभूतपूर्व स्वास्थ्य वर्धता पायी गयी। एक अन्य प्रयोग में 36 डायबिटिक लोगों पर जिनसिंग के 8 सप्ताह उपयोग के उपरान्त यह ज्ञात हुआ कि जिन लोगों को 200 मिली ग्राम, जिनसिंग प्रतिदिन दी गयी थी उनके सामान्य स्वास्थ्य, ओज, मनोदशा तथा शारीरिक एवं मानसिक अनुष्ठान में वृद्धि हुई।

नपुंसकता शामक गुण

इस गुण के सत्यापन के लिए 135 मनुष्यों का चुनाव कर इनमें से 45 लोगों को 900 मिलीग्राम की मात्रा में 3 बार प्रतिदिन 8 सप्ताह तक लाल जिनसिंग का सेवन कराया गया। परिणाम स्वरुप यह ज्ञात हुआ कि इन लोगों की मैथुन शक्ति में आशातीत वृद्धि हुई।

कैंसर रोधी गुण

दक्षिण कोरिया में, विभिन्न स्तर के कैंसर ग्रस्त मनुष्यों एवं स्त्रियों पर अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि जिनसिंग के उपयोग से कैसर रोग का खतरा 60% तक कम हो जाता है। उपरोक्त रोग में जिनसिंग की मात्रा का विशेष महत्व होता है इसलिए इसके सेवन की मात्रा डाक्टर/वैद्य की सलाह

तालिका - 7

औषधि भेषज गुण	जिनसिंग की मात्रा	जिन जीवों पर प्रयोग किया गया
1. स्नायु तन्त्र		
CNS- दबाव प्रभाव	50 मिलीग्राम / किलोग्राम×7 दिन	चूहियां
विद्युत आपेक्षात्मक आघात रोधी	11.25 ग्राम/ किलोग्राम	चूहे
स्मृति वृद्धि कारक		चूहे
2.हृदय तन्त्र		
हृदय कोशिका रक्षक किया	20मिलीग्राम / किलोगाम I.V	कुत्ते
हृदय संवाहनी निरोधी	54.27, 13.5 मिलीग्राम / किलोग्राम	चूहे
NE, Kcl, $Cacl_2$, विरोधी प्रभाव	120 मिलीग्राम / किलोग्राम	खरगोश, गुनिया सुअर
CHD रोधी प्रभाव	0.03–3 मिलीग्राम / मिनट	रोगी मनुष्य
ANP जनन अभिव्यक्ति पर प्रभाव	50 मिलीग्राम / किलोग्राम × 7 दिन	चूहे
3.शारीरिक वृद्धि एवं उपापचय पर प्रभाव		
शारीरिक भार में वृद्धि	–	युवा चूहे एवं चुहिया
लिपिड उपापचय को सामान्य रखना	60 मिली ग्राम / किलोग्राम	खरगोश
4.अतिशर्करारोधी प्रभाव		
शर्करारोधी प्रभाव	–	मधुमेह रोगी
अतिशर्करारोधी प्रभाव		चूहे, चुहियों
रक्त में ग्लूकोज को कम करने का प्रभाव	150मिलीग्रा0 / किलोग्राम 12 दिन	चुहिया
रक्त में इंसुलिन की मात्रा में वृद्धि		चूहे, चूहिया
5.स्थूलता रोधी प्रभाव		
शारीरिक भार में कमी	150 मिलीग्राम / किलोग्राम / 12 दिन	चुहियों
6.कैंसर रोधी प्रभाव		
प्रोस्टेट ग्रन्थि, मूत्राशय एवं वृक्क कैंसर रोधी	–	कैंसर रोगियों
कैंसर कोशिका को समाप्त करने का गुण	–	सामान्य एवं कैंसर युक्त कोशिकाओं पर
एपोप्टोपिक कोशिका संख्या को कम करना	60–140 मिग्रा0 / किलोग्राम	चूहे की कोशिका
7.आक्सीकारक रोधी एन्जाइम किया निरोधक	40–200 मिलीग्राम / किलोग्राम	मधुमेही चूहे
8.हृदयी कोशिकाओं में आक्सीकारक रोधी गुण	0.25–1.0 मिलीग्राम / किलोग्राम	चूहे की हृदयी कोशिका

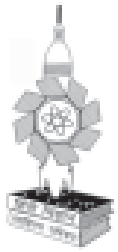

से ही लेनी चाहिए।

जिनसिंग के समरुप/विकल्प : कुछ अन्य वनस्पतियों को, जो कि एडोप्टोजेनिक मानी जाती है, जिनसिंग के समतुल्य अथवा विकल्प के रुप में माना जाता है। जबकि ये वनस्पतियां न तो जिनसिंग के वंश की है, न कुल की और न ही इनमें जिन्सिनोसाइड रसायन होते है। इस संदर्भ में केवल जियाओं गुलान ही एक मात्र ऐसी वनस्पति है जिसमें लगभग जिनसिंग के समतुल्य रसायन विद्यमान है। प्रो. डैविट विन्सटन एवं स्टीवेन मेम्स की 'एडोप्टोजन' नामक पुस्तक में निम्न वनस्पतियों का वर्णन है जो कि एडोप्टोजेनिक होने के कारण जिनसिंग का विकल्प मानी जाती है।

1.गाईनोटिमा पेन्टाफाइलम - दक्षिणी जिनसिंग, (जियाओगुलाल)
2. स्ट्राडोस्टिलेरिया हेट्रोफाइला -प्रिंस जिनसिंग
3. विथानिया सोमनीफेरा -भारतीय जिनसिंग (अश्वगंधा)
4. फैफिया पैनीकुलाट-ब्राजीलियन जिनसिंग
5. इल्यूथिरोकोकस सेन्टीकोकस -साइबेरियन जिनसिंग
6. लिपीडियम मियेनी-पिरुवियन जिनसिंग
7. ओपलोपैनेक्स होरीडस-एलास्का जिनसिंग
8. एन्जिलिका साइनेन्सिस - स्त्री जिनसिंग, डोंग क्वार्ड (एडोप्टोजेनिक नहीं है)
9. पैनेक्स नोटो जिनसिंग - सैन क्वी, टियान क्वी, टिन ची (एडोप्टोजेनिक नहीं है)

व्यवसाय एवं उत्पाद

अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर जिनसिंग की जड़ों का व्यवसाय कई अरब अमेरिकी डालर प्रति वर्ष का है। इसमें कनाडा, चीन, कोरिया तथा अमेरिका ही प्रमुख देश है जो पूरे विश्व में जिनसिंग की जड़ों एवं इससे तैयार किये गये अनेकों उत्पादों का निर्यात करते है। साधारणत; 1 ग्राम जिनसिंग की जड़ के पाऊडर का मूल्य 20-40 अमेरिकी डालर होता है। इसके मूल्य में भिन्नता जिनसिंग की प्रजाति एवं शुद्धता के आधार पर होती है। वर्ष 2009 में कनाडा द्वारा 2700 टन जिनसिंग की जड़ का निर्यात चीन तथा एशिया को किया था।

जिनसिंग का उत्पादन अमेरिका के एक विशेष प्रांत विस्कोन्सिन में सर्वाधिक होता है। एक रिपोर्ट के अनुसार पूरे विश्व में अमेरिकन जिनसिंग के उत्पादों की मात्रा 6000-7000 टन प्रति वर्ष है। इसमें से 4000 टन केवल चीन ही आयात कर लेता है। शेष मात्रा हांगकांग, ताईवान, मलेशिया, थाईलैंड एवं अन्य देशों को निर्यात की जाती है। वर्तमान समय में जिनसिंग के व्यवसाय में कनाडा का प्रथम स्थान है तथा अमेरिका का दूसरा।

अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में जिनसिंग की जड़ों एवं इसके उत्पादों का व्यवसाय अनवरत वृद्धि पर है। इसका मुख्य कारण है मनुष्य की स्वास्थ्य के प्रति सजगता तथा एलोपैथिक औषधियों के उपयोग से स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव। आज व्यक्ति संश्लेषित रसायनों के उपयोग से यथा संभव बचना चाहता है, इसीलिए जड़ी-बूटियों एवं इनके उत्पादों की मांग में लगातार वृद्धि होती जा रही है।

एक सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार जिनसिंग की मांग कोरियायी देशों, हांगकांग में सबसे अधिक है। जिनसिंग के विभिन्न प्रकार के उत्पादों में कोरिया, चीन एवं अमेरिका अग्रणी देश है। ये उत्पाद शरीर के अनेक रोगों के लिए उपयोगी होते हैं। स्वास्थ्यरक्षक उत्पादों के अतिरिक्त जिनसिंग चाय, जिनसिंग साबुन, जिनसिंग टूथपेस्ट, जिनसिंग जैली, जिनसिंग जैम/स्लाइस, जिनसिंग पेय पदार्थों की श्रृंखला तथा अनेक सौंदर्य प्रसाधन उत्पाद भी जिनसिंग से निर्मित किये जाते है। उपरोक्त देशों द्वारा निर्मित प्रमुख प्रचलित उत्पादों का वर्णन निम्नलिखित है।

कोरिया : जिनसिंग के उत्पादों के उत्पादन एवं व्यवसाय में इसका प्रमुख स्थान है। इसके उत्पादों में कोरिया जिनसिंग चाय, कोरिया जिनसिंग पेय, कोरिया लाल जिनसिंग शक्ति दायक पेय, जिनसिंग टेबलेट, पाउडर एवं लाल जिनसिंग निष्कर्ष आदि है।

अमेरिका : कोरिया के समान अमेरिका भी जिनसिंग के उत्पादों में अग्रणी है। इसके उत्पादों की भी श्रृंखला है। जिसमें जिनसिंग चाय, टूथपेस्ट, पेय, टेबलेट, कैप्सूल, पाऊडर आदि सम्मिलित है। ये उत्पाद अन्य देशों को निर्यात करने के अतिरिक्त सभी रोगों एवं सामान्य स्वास्थ्य रक्षा के लिए वहां के बाजार में उपलब्ध है।

चीन : चीन में भी जिनसिंग के उत्पाद उपरोक्त देशों के समान्तर ही है। पूरे विश्व में कुल जिनसिंग उत्पादन का 40 प्रतिशत अकेले चीन करता है। सामान्य उत्पादों के अतिरिक्त इसके विशिष्ट उत्पादों में जिनसिंग स्लाइस, जिनसिंग पत्ती का निष्कर्षण, जिनसिंग की जड़ एवं इसका पाउडर आदि है।

उपयोग की मात्रा:

वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनुसंधानों के परिणामों के अनुसार जिनसिंग की 500-1500 मिली ग्राम मात्रा का लंबे समय तक सेवन करने से अच्छा स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है। चीन के वैद्यो - हकीमों के अनुसार 1-2 ग्राम जिनसिंग की जड़ का उपयोग वयस्क स्त्री/पुरुष के लिए लाभप्रद है। परंतु जिनसिंग का सेवन कम मात्रा से प्रारंभ करना चाहिए तत्पश्चात कुछ सप्ताह बाद धीरे-धीरे इसकी अधिक मात्रा में वृद्धि करनी चाहिए।

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2010 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत

- डॉ.श्याम मनोहर व्यास -
15 - पंचवटी, उदयपुर, राजस्थान 313004

हमारे दैनिक जीवन में ऊर्जा क़ा उपयोग विभिन्न रूपों में होता है। विज्ञान के शब्दों में कार्य करने की क्षमता को ऊर्जा कहते हैं। ऊर्जा के विभिन्न रूप हैं : (1) यांत्रिक ऊर्जा (2) ऊष्मा ऊर्जा (3) रासायनिक ऊर्जा (4) प्रकाश ऊर्जा (5) चुम्बकीय ऊर्जा (6) ध्वनि ऊर्जा (7) विकिरण ऊर्जा (8) विद्युत ऊर्जा तथा (9) परमाणु ऊर्जा।

संसार की सभी गतिमान वस्तुएं ऊर्जा के कारण ही गतिशील होती हैं।

सूर्य दीर्घ कालिक ऊर्जा का स्रोत

सूर्य ऊर्जा का प्राचीन व मुख्य स्रोत है। ऊर्जा के अन्य स्रोतों का मुख्य कारण सूर्य है। इसीलिए हमारे प्राचीन धर्म ग्रंथों में सूर्य को ईश्वर का रूप माना है। अनादि काल से सूर्य भारी मात्रा में ऊर्जा का प्रसारण कर रहा है।

सूर्य की बाहरी सतह का ताप 6000^{0}C के लगभग है

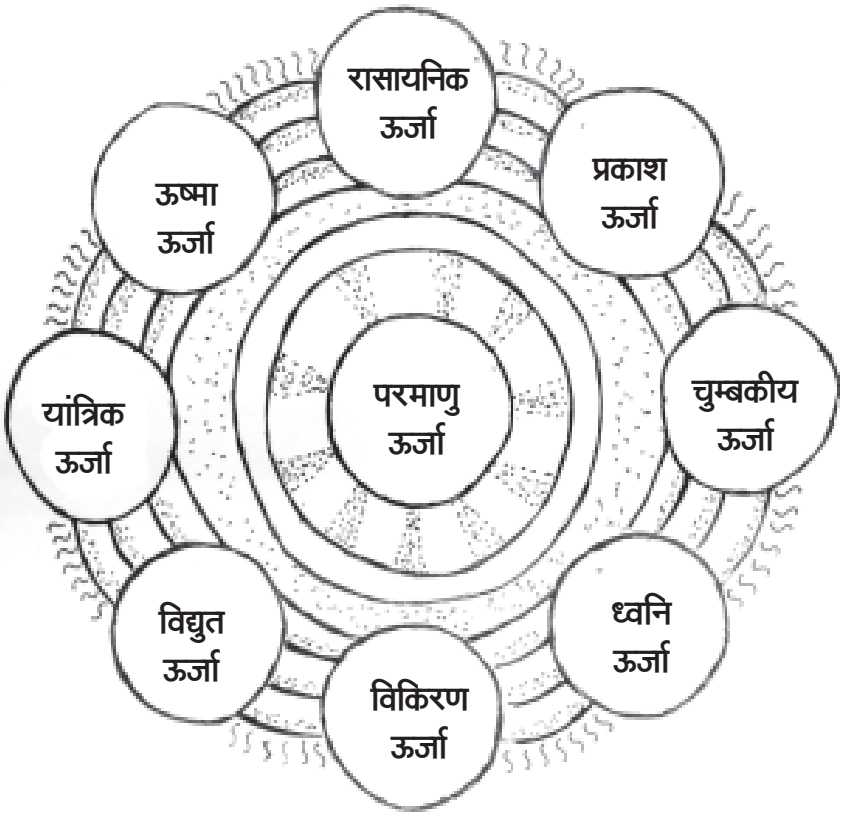

ऊर्जा के रूप

ऊर्जा के स्रोत

जबकि भीतर सतह का ताप 2 करोड़ डिग्री सेंटीग्रेड के लगभग है। सूर्य के गर्भ में अधिकांश हाइड्रोजन है। सूर्य के भीतरी सतह का ताप अधिक होने के कारण जब यह हाईड्रोजन बदलकर इलियम में परिणत होती है, तो बड़ी मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न होती है। इसी ऊर्जा का एक अंश पृथ्वी पर ऊष्मा एवं प्रकाश के रूप में पहुंचता है। सूर्य से प्रति सैकण्ड निकलनेवाली ऊर्जा का मान $3.8x10^{26}$ जूल है। जूल ऊर्जा मापने की इकाई है।

ऊर्जा के प्राकृतिक स्रोत

ऊर्जा के कई प्राकृतिक स्रोत हैं। लकड़ी, कोयला, पेट्रोलियम ऐसे स्रोत हैं जिनका प्रयोग हम एक लंबे समय से ऊर्जा प्राप्त करने में करते हैं। हमारे देश में धनबाद व झरिया में कोयले की बड़ी-बड़ी खदाने हैं। खनिज कोयले से भाप के इंजन चलते हैं व बिजली पैदा की जाती है। पेट्रोलियम के भी बड़े-बड़े कुँएं हैं, जिनसे पेट्रोल व प्राकृतिक गैस प्राप्त की जाती है। अधिकांश कल-कारखाने इनसे चलते हैं। पेट्रोलियम एवं कोयले का उपयोग आज के तकनीकी और औद्योगिक विकास के युग में काफी बढ़ गया है। इस हेतु राष्ट्रीय स्तर पर नियंत्रण, वितरण और खोज के लिए संस्थान बन चुके हैं।

कृषि अपशिष्ट यथा गोबर, सड़ी-गली घास, अनाज की भूसी आदि से बायोगैस संयंत्र लगाये जाते हैं। इनसे उत्पन्न गैस से कई कार्य संपन्न होते हैं जैसे भोजन पकाना, घरेलू बिजली का उत्पादन आदि। रेडियो सक्रिय तत्वों का उपयोग कर परमाणु भट्टी द्वारा विद्युत ऊर्जा उत्पन्न की जाती है। रावतभाटा (राजस्थान), तारापुर (महाराष्ट्र) आदि स्थानों पर परमाणु भट्टियां हैं, जहां परमाणु ऊर्जा से बिजली उत्पन्न की जाती है।

भारत में प्राप्त ऊर्जा के स्रोत तो को आम तौर पर दो वर्गों में बांटा जा सकता है :-

(1) ऊर्जा के पारंपरिक स्रोत जिनमें लकड़ी, कोयला, गैस, पेट्रोलियम, आणविक ईंधन तथा जल विद्युत आती हैं।

(2) ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोत जिनमें सूर्य से प्राप्त ऊर्जा, वनस्पति अवशेष तथा गोबर से प्राप्त ईंधन आते हैं।

ऊर्जा के प्राकृतिक व व्यावसायिक साधन खर्चीले हैं और इनकी खपत इतनी है कि एक न एक दिन ये स्रोत समाप्त हो जाएंगे। अतः ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत खोजना आवश्यक हो गया है। ये स्रोत सस्ते एवं ग्रामोन्मुखी हैं। लकड़ी भारतीय गांवों में ऊर्जा का सबसे अधिक पारम्परिक स्रोत है।

90% से ऊपर ग्रामीण इसका उपयोग करते हैं। सूखी लकड़ी का पर्याप्त मात्रा में मिलना दुर्लभ होता जा रहा है इसलिए सूर्य से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग करना अनिवार्य हो गया है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा को 'सौर ऊर्जा' कहा जाता है।

सौर-चूल्हा : ईंधन बचत का सस्ता उपाय

पेड़ों की निरंतर कटाई से कोयला महंगा हो रहा है, वहीं पर कैरोसिन के भाव भी आसमान को छू रहे हैं। गैस के चूल्हे भी सर्वसाधारण को सुलभ नहीं है। ऐसी स्थिति में हमें 'सौर ऊर्जा' पर निर्भर रहना होगा। ग्रामीण जगत में सौर-चूल्हा अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। सौर-चूल्हे से न केवल अमूल्य ईंधन की बचत होगी, अपितु सौर-ऊर्जा से पौष्टिक खाना भी सुलभ होगा। राजस्थान में खादी ग्रामोद्योग के उदयपुर केंद्र ने 'चित्रा' सौर चूल्हे का निर्माण किया है। यह सौर चूल्हा सूर्य के प्रकाश को एकत्रित कर, ऊष्मा में बदल देता है। इसमें सूर्य ऊर्जा एक कुचालक डिब्बे में सांद्रित की जाती है। यह कुचालक डिब्बा दोहरे कांच के ढक्कन से

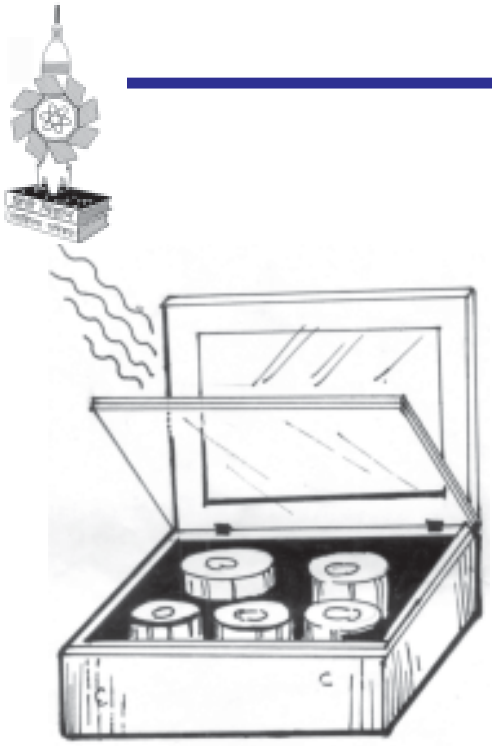

सौर-चूल्हा

ढंका रहता है ताकि ऊष्मा बाहर न जा सके।

जैसे-जैसे सूर्य का प्रकाश इस डिब्बे में पड़ता है, वैसे-वैसे डिब्बे के अंदर का तापमान बढ़ता जाता है और करीब-करीब 120 डिग्री से 130 डिग्री सेंटीग्रेड तक एक घंटे में हो जाता है। सौर चूल्हे को सूर्य की दिशा में ठीक ढंग से लगा देना चाहिए। 'चित्रा' सौर चूल्हे की बनावट सरल है। यह एक संदूक के समान 55 सेमी. लंबा, 55 सेमी. चौड़ा और 25सेमी. ऊंचा है। इस संदूक में टिन की एक ट्रे हैं जो काले रंग से रंगी हुई है। संदूक व ट्रे के बीच की जगह में कुचालक पदार्थ की पैकिंग है जो गर्मी रोकती है। इस चूल्हे में दो ढक्कन हैं। बाहर के ढक्कन में एक आइना लगा हुआ है तथा दूसरे ढक्कन में दोहरे साधारण कांच लगे हुए हैं जो लकड़ी के फ्रेम में फिट है। कांच जहां लकड़ी से जुड़ा है, वहां रबर की पतली डोरी लगी है जिससे कांच का ढक्कन ट्रे पर फिट बैठ सके और गर्मी बाहर न निकले। सौर चूल्हे के नीचे चार पहिए लगे हैं जिससे व्यक्ति इसे आसानी से इधर-उधर ले जा सकता है।

आइनेवाले ढक्कन को रोकने के लिए एक लोहे की छड़ है जो डिब्बे के किनारे में फंसा दी जाती है। यह सौर चूल्हा चार अल्यूमिनियम के डिब्बों के साथ आता है जिन्हें बाहर से काले रंग से रंगा गया है, क्योंकि काला रंग अधिक ऊर्जा अवशोषित करता है। सौर चूल्हे से गर्म बर्तनों को निकालने के लिए दो दस्ताने भी आते हैं।

सौर चूल्हे से चावल, दाल, सब्जियां, मांस-मछली, केक, अंडे, खीर, चाय आदि बना सकते हैं।

सौर चूल्हे में खाना स्वच्छ रूप में पकता है। खाद्य पदार्थों के विटामिन्स एवं खनिज तत्व भी नष्ट नहीं होते। खाने में कैरोसिन, गैस व धुएं की दुर्गन्ध भी नहीं आती। खाने का स्वाद व रंग भी प्राकृतिक रूप से विद्यमान रहता है।

बरसात या बादल होने पर इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है।

सौर ऊर्जा के अन्य उपयोग

सौर-ऊर्जा का उपयोग सौर-बैटरी में भी किया जा रहा है। हमारे देश के उपग्रह आर्य भट्ट पर 18,000 सेल अर्थात सौर बैटरियां लगी थी। वे सौर ऊर्जा की शक्ति को बिजली में बदल कर उपग्रह के कई कार्य संपन्न करती थी।

उपग्रहों के माध्यम से दूरदर्शन के कार्यक्रम दूरदराज के गांवों में दिखाना संभव हुआ है। इनके द्वारा अब मौसम की भी जानकारी प्राप्त होने लगी है।

राजस्थान की पश्चिमी सीमा पर स्थित कई गांवों को सौर ऊर्जा से प्राप्त बिजली से ही प्रकाश मिलता है। जर्मनी की स्टूटगार्ट स्थित 'ऊर्जा' इंजीनियरिंग संस्थान ने एक यंत्र बनाया है जिसका नाम 'सौर ऊर्जा भण्डारण यूनिट' है। यह यूनिट साधारणतया घरेलू उपयोग के लिए बनाई गई है। इसमें रसोई और स्नान घर के लिए 95 डिग्री सेंटीग्रेड तक पानी गर्म होता है, सर्दियों में कमरे गर्म किए जाते हैं। दाल-भात और रोटी पकाई जाती है, चाय-दूध आदि भी गर्म किए जाते हैं।

इसमें एस्फाल्ट लेपित एल्यूमिनियम की प्लेटें सूर्य की ऊर्जा को बटोरने का काम कराती है। यदि इसका प्रयोग गांवों में अत्यधिक मात्रा में किया जाए तो परम्परागत ईंधन (गोबर) की बचत की जा सकती है, जिसको खाद के रूप में खेतों में इस्तेमाल किया जा सकता है।

हैदराबाद के वैज्ञानिक अनुसंधान केंद्र ने जर्मन वैज्ञानिकों के सहयोग से सौर अंगीठी का आविष्कार किया है। इसका आकार-प्रकार एक टोकरी जैसा है - मुख्यतया यह बांस से बनाई जाती है। इसके भीतरी भाग में आटे की लेई से सिल्वरी कागज की परत चिपकी रहती है। इस प्रकार कांच के गुणों वाली यह सौर-अंगीठी छोड़े गए खाली स्थान पर सूर्य की किरणों को प्रतिबिम्बित करती है। इस खाली स्थान पर पकाई जाने वाली चीजें रखी जाती हैं जैसे पानी, दाल, चावल और साग-सब्जियां आदि। इससे ठंडा पानी केवल 5 मिनट में गर्म हो जाता है। चावल 15 मिनट में व दाल 20 मिनट में पक जाती है। गांवों में इस सौर अंगीठी का अच्छा उपयोग हो सकता है।

पिलानी स्थित 'बिड़ला इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी' ने एक ऐसा पंप तैयार किया है जो सौर ऊर्जा से पानी निकालने का कार्य करता है। 'केंद्रीय निर्जल अनुसंधान संस्थान' जोधपुर (राजस्थान) ने एक यंत्र सौर ऊर्जा का 'स्टेप परावर्तक' बनाया है। यह सूर्य की बिखरी हुई किरणों को एक जगह केंद्रित करने के साथ-साथ उसकी गर्मी को घना व तेज बनाकर जमा कर लेता है। इस गर्मी से खाना बनता है, भाप तैयार होती है जिससे अन्य कार्य होते हैं। एक साधारण कारीगर भी अपनी कार्यशाला में सौर-ऊर्जा के उपकरणों को सस्ते में बना सकता है।

ऊर्जा का अक्षय स्रोत : गोबर गैस संयंत्र

गोबर गैस संयंत्र भी ईंधन प्राप्त करने का एक सस्ता, टिकाऊ व हानि रहित उपाय है। बायो का अर्थ जैविक उच्छिष्ट से है। जीवों द्वारा उत्सर्जित अवशिष्ट पदार्थों से बायो गैस उत्पन्न की जाती है। इसमें मिथेन गैस का बाहुल्य होता है। सरकारी व गैर-सरकारी संस्थान भी गोबर गैस संयंत्र जुटाने में लगे हैं।

सौर ऊर्जा से बिजली

उदयपुर स्थित सुखाड़िया विश्वविद्यालय ने एक घन मीटर आयतन का एक बायोगैस संयंत्र लगाया जिससे बिजली उत्पन्न की गई थी। इससे कुट्टी काटने की मशीन, दाना पीसने का कार्य आदि किया गया। वैसे तो देशभर में क्षेत्रीय बायोगैस कार्यक्रम पिछले पांच दशकों से चलाया जा रहा है पर, खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड की इसमें विशेष भागीदारी रही।

दिल्ली के महीदपुर गांव में बिजली, फसल-कटाई, खाना पकाने की गैस आदि की पूर्ति बायोगैस संयंत्र से पिछले दस वर्षों से की जा रही है। गांव में पशुओं का गोबर व अन्य अवशिष्ट पदार्थ गैस-निर्माण के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

परियोजना का व्यापक रूप

भारत सरकार का ऊर्जा मंत्रालय अपारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के विकास के लिए सहायता देता है। बायोगैस संयंत्रों के निर्माण की अत्याधुनिक तकनीक तक पहुंचने के लिए राज्यों के अधिकारियों तथा कर्मचारियों को प्रशिक्षण भी व्यापक रूप से देने लगा है।

देश के कई कृषि विश्वविद्यालयों के औद्योगिक एवं कृषि अभियांत्रिकी विभाग ने काफी संस्थागत तथा सामुदायिक संयंत्रों की स्थापना की है।

उदयपुर (राजस्थान) के पशु चिकित्सालय, नाथद्वारा के श्री नाथजी के मंदिर, कांकरोली के द्वारिकाधीश मंदिर एवं नाई गांव में संयंत्र लगाने की परियोजना चलाई गई। अन्य आस-पास के गांवों यथा पलाना, बम्बोरा, कुराबड़ आदि में भी यह परियोजना विस्तारित की गई। कुराबड़ गांव के निवासी श्री तेजराम पटेल के अनुसार उसके घर में विगत 10 वर्षों से भोजन पकाने के लिए बायो गैस प्रयुक्त की जा रही है। वह स्वयं किसान है, इसलिए पशुओं के गोबर की समस्या नहीं रहती।

उनकी शिकायत यही है कि इस गैस को सिलेण्डर में क्यों नहीं भरा जा सकता? यह तकनीकी कठिनाई है जिस पर विशेषज्ञों को विचार करना चाहिए। नाथद्वारा के मंदिर में स्थापित बायोगैस संयंत्र से भोजन व प्रसाद पकाने का सारा कार्य पूरा किया जाता है। बल्लभनगर (उदयपुर) के पशुधन अनुसंधान केंद्र में चार संस्थागत संयंत्र लगाए गये, जिनकी कुल क्षमता सौ घन मीटर है। इस गैस से बिजली भी पैदा की जाती है। इससे नाइट्रोजन प्लांट, कुट्टी काटने की मशीन, ग्राईन्डिंग मिल एवं पानी का पम्प चलाया जा रहा है।

उदयपुर के पशु चिकित्सालय में 25 घनमीटर का और बीकानेर के पशु चिकित्सालय में 60 घनमीटर क्षमता वाला एक संयंत्र लगाया गया। इस गैस का उपयोग 50 छात्रों का खाना पकाने में किया जाता है।

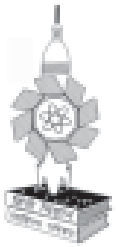

काँकरोली के मंदिर में 45 घनमीटर तथा नाथद्वारा के मंदिर में 120 घनमीटर गैस वाला संयंत्र लगाया गया।

पवन ऊर्जा - वायु से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग प्राचीन काल से नदियों और समुद्रों में पालदार नावों को चलाने में किया जाता रहा है। पवन का उपयोग पवन चक्कियों को चलाने में किया जाता है। हॉलैण्ड में स्थित पवन चक्कियों का उपयोग समुद्र के पानी को हटाने में किया जाता है।

पवन चक्की किसी भी स्थान पर कुएं अथवा बोरिंग पर 1.5 से 2.5 हैक्टेयर सिंचाई अथवा 1500 की जनसंख्या के पेयजल की व्यवस्था हेतु उपयोगी होती है। पांच हॉर्स पावर वाली पवन चक्की का लागत मूल्य लगभग 25,000 रुपए है।

पवन चक्की

विन्ड बैट्री चार्जर भी पवन ऊर्जा चालित होता है। इसमें 8मी. प्रति सैकण्ड वायु गति पर 50 वॉट विद्युत, उत्पन्न होती है जिसे बैट्री चार्ज करने के काम में लाते हैं। इस प्रकार के संयंत्र हमारे देश में पर्वतीय क्षेत्रों में भी स्थापित किए जा सकते हैं।

लघुतर जल विद्युत ऊर्जा - हम जानते हैं कि लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठों को नदी में पानी के साथ बहा कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है। नदियों का पानी बांधों में एकत्र होने से उनमें पानी का तल बढ़ता है जिससे पानी की स्थितिज ऊर्जा बढ़ती है।

इस पानी को ऊंचाई से गिराकर टरबाईन चलाया जाता है। टरबाईन से जेनरेटर को चलाकर विद्युत ऊर्जा उत्पन्न की जाती है। इसे जल विद्युत ऊर्जा (Hydro Electricity)) कहते हैं।

इस विद्युत ऊर्जा का उपयोग अनेक कार्यों में किया जाता है। राजस्थान में राणा प्रताप बांध, माही बांध तथा मध्य प्रदेश में गांधी सागर बांध से जल-विद्युत पैदा की जाती है। भाखरा नॉगल (पंजाब) भारत का सबसे बड़ा विद्युत देनेवाला बांध है। उत्तराखंड में स्थित टिहरी बांध से भी विद्युतऊर्जा उत्पन्न की जाएगी।

झरनों, नदियों तथा नहरों से जहां पानी कुछ ऊंचाई से गिरता है, लघुतर जल विद्युत संयंत्रों को स्थापित कर छोटे पैमाने पर विद्युत उत्पादन कर के आस-पास के गांवों की आवश्यकता पूरी की जा सकती है।

समुद्र की सतह पर आनेवाली ज्वार भाटा प्रक्रिया में जलस्तर के उतार-चढ़ाव को जल-विद्युत उत्पादन के लिए उपयोग में लिया जा सकता है।

पश्चिमी राजस्थान के सीमावर्ती कई गांव रात्रि होते ही सौर ऊर्जा चालित बैटरियों से उत्पन्न बिजली के प्रकाश से जगमगा उठते हैं। सौर-फोटो वोल्टेइक प्रणाली के माध्यम से कई आदर्श ग्रामों के कम्यूनिटी सेंटर में प्रकाश-व्यवस्था की गई है।

विभिन्न अध्ययनों एवं सर्वेक्षणों से सिद्ध हो गया है कि समन्वित ऊर्जा प्रणालियां सस्ती हैं, जिनमें परम्परागत प्रणालियों से ऊर्जा की सप्लाई वाले स्थानीय रूप से उपलब्ध ऊर्जा स्रोतों का उपयोग किया जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि ऊर्जा के गैर पारम्पारिक स्रोतों का सही ढंग व योजनाबद्ध रूप से उपयोग किया जाए। ऊर्जा के मुख्य स्त्रोत सूर्य से हम ऊर्जा प्राप्त कर विज्ञान के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन कर सकते हैं।

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2010 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

मैंग्रोव का अदभुत संसार

- डॉ. सविता गुप्ता -
डी-2/78 विनीत खण्ड 2, गोमती नगर, लखनऊ-226010 (उ.प्र.)

मैंग्रोव शब्द 'सामूहिक संज्ञा' है। यह पुर्तगीस शब्द 'मेन्ग्यू' एवं अंग्रेजी शब्द ''ग्रीव'' से मिलकर बना है। मैंग्रोव एक विशेष परिस्थितिकी तंत्र है जो पौधों एवं जीव जंतुओं के सम्मिश्रण से समुद्र एवं नदी के तटों पर विशेषतया लहरों के आवागमन स्थल पर बनता है। मैंग्रोव शब्द का प्रयोग लवण प्रिय (हैलोफिटिक) एवं लवण प्रतिरोधी, समुद्री ज्वार भाटे को सहन करनेवाले वनों के लिए भी किया जाता है। इसमें वृक्षों की ऐसी प्रजातियां आती हैं जिनकी विशेष बनावट उन्हें लवणीय या खारे पानी में डूबे रहकर भी जीवित रखने में सक्षम होती है। यह वन वृक्ष, झाड़ी, पाम, एपीफाइट, जमीनी फर्न एवं घास के बने होते हैं। इन्हें अनेक नामों से जाना जाता है जैसे मंगल, मैंग्रोव स्वैम्प, मैंग्रोव जंगल आदि। मैंग्रोव उष्ण कटिबन्धीय अथवा समशीतोष्ण स्थानों पर उगते हैं जहां इनकी बढ़त एवं जीवित रहने के लिए उचित तापमान होता है। यह समुद्र तटों पर ऐसे स्थानों पर पाए जाते हैं जहां महीन तलछट (सेडीमेंट), जिसमें कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में हो एकत्र होती हैं और तेज लहरें अप्रभावी रहती हैं। इनका पर्यावरण, पौधों एवं जीव जन्तुओं का आपस में तथा वातावरण से संबंध स्वच्छ पानी और समुद्री नमकीन पानी दोनों से प्रभावित रहता है। मैंग्रोव वृक्षों के तनों में लवणता तथा ज्वार भाटे को अनवरत सहने के लिए शारीरिक एवं कार्यिक अनुकूलन उत्पन्न हो जाते हैं। इनके आसपास अनेक प्रकार के पौधे तथा जीव जंतु एकत्र हो जाते हैं जो इस विशिष्ट अनुकूलन के अनुरुप हैं। यह नदी के मुहानों तथा खुले समुद्री तटों दोनों पर पाए जाते हैं। मैंग्रोव इकोसिस्टम अत्यंत प्रभावी व उपजाऊ हैं। यह कार्बनडाइआक्साइड को अत्यधिक मात्रा में सोखकर प्रदूषण को कम करते हैं। इनके कार्बन स्थिरीकरण द्वारा समुद्र तटीय भोजन श्रृंखला प्रभावित होती है। इनकी पत्तियों के क्षय से कार्बनिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं तथा चट्टानों के क्षरण से निकलने वाले पत्थर और मिट्टी, लहरों द्वारा बहकर किनारे आते हैं। जो विभिन्न पौधों एवं जीव जंतुओं को आवास व भोजन प्रदान करते हैं।

मैंग्रोव शब्द का प्रयोग मुख्यतः राइजोफोरेसी कुल की जाति राइजोफोरा के लिए भी होता है।

मैंग्रोव इको सिस्टम न केवल पौधों और जीवों को प्राकृतिक आवास प्रदान करता है अपितु यह तटीय स्थानों का कटाव, तूफान एवं सुनामी के आघात या प्रभाव को कमजोर करने में भी सहायता प्रदान करता है।

मैंग्रोव समूह में पाए जाने वाली वनस्पति को 3 भागों में बांटा जा सकता है – (1) वास्तविक मैंग्रोव (2) सहायक पेड़ पौधे (3) समुद्री घास जिसमें जलीय फूलने वाली वनस्पति जो वास्तव में घास कुल की नहीं होती है। इसके अतिरिक्त शैवाल (समुद्री खरपतवार तथा सायनोबेक्टीरिया को छोड़कर अन्य सभी शैवाल), सूक्ष्म जीव, कवक, जीवाणु, वायरस, तथा प्रोटोजोआ, बेन्थोस, पानी के कीड़े, केचुएं, लीच आदि जीव जंतु भी इन क्षेत्रों में पाए जाते हैं।

भौगोलिक क्षेत्र : मैंग्रोव यूरोप को छोड़कर पूरे विश्व में पाये जाते हैं (चित्र-1)। इनके लिए गर्म या समशीतोष्ण जलवायु जहां गर्मी का तापमान 24^0 सेल्सियस से अधिक हो, 30^0 उत्तर और 30° दक्षिण लेटीट्यूड के बीच के समुद्री तट जहां वार्षिक वर्षा 1250 मि.मी. से अधिक हो, पाए जाते हैं। मुख्य देश जहां मैंग्रोव आच्छादित है- भारत, इन्डोनेशिया, ब्राजील, आस्ट्रलिया, नाइजीरिया एवं मेक्सिको हैं।

अफ्रीका - यहां विश्व का 21% मैंग्रोव है। कीनिया और मेडागास्कर में महत्वपूर्ण मैंग्रोव दलदल हैं। नाइजीरिया में अफ्रीका का सबसे बड़ा और विश्व में तीसरा मैंग्रोव है। यहां की जलवायु नम और गर्म है। नाइजर डेल्टा जो पहले लगभग 10,000 वर्गकिमी. क्षेत्र मैंग्रोव से आच्छादित था वृक्षों

(चित्र-1) विश्व में मैंग्रोव वन

की कटान और तेल के कुओं के कारण घटकर 7386 वर्गकिमी. रह गया है। यहां की सबसे मुख्य प्रजाति राइजोफोरा रेसीफोसा (90%) है। इनके वृक्ष 25-40 मी. ऊंचे और लगभग 3 मी. व्यास वाले होते हैं।

अमेरिका- अमेरिका के गर्म भागों में उत्तर, दक्षिणी तथा केंद्रीय अमेरिका में मैंग्रोव पाए जाते हैं। फ्लोरिडा ब्राजील एवं कोलम्बिया में विश्व का 15 प्रतिशत मैंग्रोव पाया जाता है। अमेरिका में 12 प्रजातियां पायी जाती हैं जिसमें 4 फ्लोरिडा में है।

एशिया - मैंग्रोव मुख्य रुप से भारत और बंगलादेश में पाए जाते हैं मुख्यतः पश्चिमी बंगाल और बंगलादेश तक फैला सुंदरबन विश्व में मैंग्रोव का सबसे बड़ा जंगल है जो जैव विविधता से भरपूर है। अरब सागर, बंगाल की खाड़ी, दक्षिणी चीन का समुद्र, एशियन नदियों के डेल्टा आदि में मैंग्रोव पाए जाते हैं। दक्षिण पूर्वी एशिया में विश्व का सबसे बड़ा और जैव विविधता से भरपूर समुद्री तंत्र है जिसमें विश्व के 41.4 प्रतिशत मैंग्रोव है। वियतनाम, कम्बोडिया, ताईवान, इन्डोनेशिया आदि में मैंग्रोव पाए जाते हैं।

मध्य पूर्वी भू भाग- मस्कट के निकट ओमान में मैंग्रोव मिलते हैं इन्हें अरबी में 'कुर्म' कहते हैं अतः ओमान में कुर्म पार्क पाये जाते हैं। यमन में बहुतायत में मैंग्रोव जंगल हैं।

आस्ट्रेलिया- आस्ट्रेलिया के उत्तरी एवं पूर्व तटों पर न्यू गुनिया और उत्तरी आस्ट्रेलिया आइलैंड में 11500 वर्गकिमी. तक मैंग्रोव फैला हुआ है। यहां पर राइजोफोरा की 50 से अधिक प्रजातियां पायी जाती हैं और जैव विविधता से भरपूर जंगल हैं।

न्यूजीलैंड - के पश्चिमी तट रागलान हारबर, पूर्वीतट तथा ओहिवा हारबर (ओपोटिकी के निकट) के दक्षिणी सिरों तक मैंग्रोव वन है।

पेसिफिक आइलैंड - यहां मैंग्रोव की 25 प्रजातियां पायी जाती है किंतु गुवाम, पलायु, कोसरे एवं याप के जंगल निर्माण कार्यों के कारण बुरी तरह नष्ट हो गए हैं।

भारतीय मैंग्रोव - यह विश्व के कुल मैंग्रोव का 3.1% है और भारत की 7500 किमी. लंबी तटीय रेखा के किनारे के सभी राज्यों में पाया जाता है (लक्षद्वीप इसका अपवाद है)। यह तटीय 4461 वर्गकिमी. के क्षेत्र में फैला है (चित्र-2)।

सुंदरबन - यह ज्वार भाटा, लवणता से युक्त एक ही स्थान पर पाया जाने वाला विश्व का सबसे बड़ा मैंग्रोव वन है। यहां गंगा, ब्रह्मपुत्र और मेघना नदियों द्वारा बंगाल की खाड़ी में मिलने से विशाल डेल्टा बनता है, जो पश्चिमी बंगाल

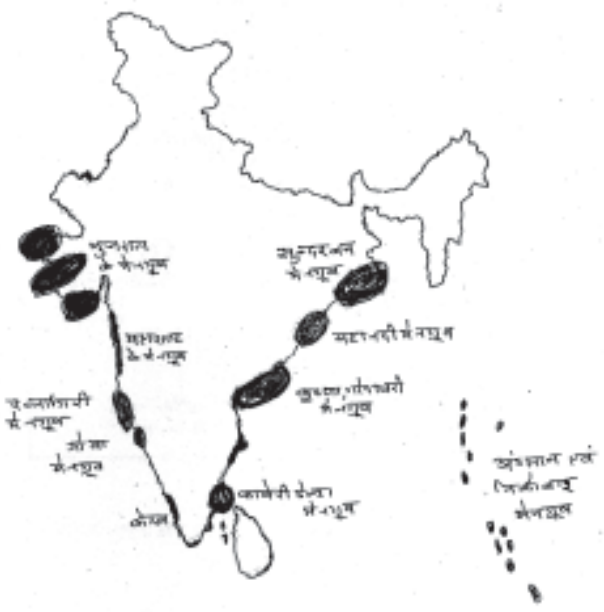

(चित्र-2) - भारत के मैंग्रोव वन

से बंगलादेश तक फैला है। यह डेल्टा 10,000 वर्गकिमी. में है जिसमें से 6000 वर्गकिमी. भू भाग बंगला देश में है। यहां सुंदरी (हेरीटिएरा फोम्स) नाम के मैंग्रोव बहुतायत में पाए जाते हैं और इनकी 50 प्रजातियां उगती हैं। सुंदरी के वन होने कारण इसका नाम सुंदरवन पड़ा है। यहां खारे और मीठे पानी का अदभुत संगम है जिससे सुंदरी के पौधों के लिए यह स्थान स्वर्ग है। वास्तव में सुंदरबन डेल्टा विश्व का जैव विविधता से भरपूर सबसे विशाल वन है जहां पौधों की विभिन्न श्रेणियां जैसे वृक्ष, झाड़ी. छोटेफर्न, पाम आदि पाए जाते हैं इन पौधों की किस्में तथा सघनता मीठे पानी और खारे पानी के अनुपात पर निर्भर करती है। सुंदरबन डेल्टा में वन 2500 वर्गकिमी. में फैला है और इसे 'टाइडल स्वैम्प फोरेस्ट' कहते हैं। यहां के घने जंगलों में खारे पानी से मिश्रित जंगल, झाड़, झंकाड़ वाले जंगल (स्क्रब फोरेस्ट) हल्के खारे पानी से मिश्रित जंगल, कूड़ा - करकट वाले जंगल (लिटोरल फोरेस्ट) नमीयुक्त जंगल तथा नम कछारी घास के जंगल पाये जाते हैं। इस डेल्टा की मिट्टी अत्यधिक उपजाऊ है अतः कृषि अधिक की जाती है।

गुजरात - गुजरात की तटीय रेखा 1650 किमी.में से लगभग 960 किमी.तक मैंग्रोव वन है जो भारत के तटीय वनों में दूसरे स्थान पर है। गुजरात में आईआरएस-I-डी (IRS1-D) तथा एलआईएसएस-III सेटेलाइड आंकड़ों (2003) से पता चलता है कि पहले पूर्ना (नवसारी जिला) नदी के मुहाने, दक्षिण गुजरात में मैंग्रोव नहीं था परंतु अब 387 हेक्टेयर क्षेत्र में घना वन है। यहां मैंग्रोव की 7 प्रजातियां सहायकों की 9 तथा लवण दलदल पौधों (marsh) की 6 प्रजातियां मिली है। यह गुजरात का अत्यधिक जैव विविधता का क्षेत्र है। यहां पायी जाने वाली मुख्य मैंग्रोव प्रजातियां एविसेन्निया मेरिना, सोनरेशिया एपीटाला, एकेन्थस इलीसीफोलियस राइजोफोरो म्यूक्रोनाटा, सेरीओप्स टागाल, ब्रूएरा सिलेन्ड्रीका एवं एजीसीरास कारनीकुलेटम है। इसके बाद अन्डमान निकोबार (700 वर्गकिमी.) तथा कच्छ की खाड़ी का स्थान है। मैंग्रोव वनों से 1600 वृक्ष, पौधे तथा 3700 जीव जंतुओं की पहचान की गयी है। मुख्य कुल राइजोफोरेसी, एकेन्थेसी, लाइथ्रेसी, क्रोब्रेटेसी, एरीकेथेसी आदि है।

तमिलनाडु - पिचावरम, चिंदबरम के निकट, दक्षिणी भारत में अनोखा मैंग्रोव है जहां विभिन्न प्रकार के पक्षी पाए जाते हैं। इनमें से कुछ पक्षी यहां के निवासी तो कुछ प्रवासी निवासी हैं। इसके अतिरिक्त शुद्ध प्रवासी पक्षी लाखों की संख्या में आते हैं। यह वन बंगाल की खाड़ी से एक समुद्रतट के द्वारा अलग है। यह विश्व का सबसे स्वस्थ, दुर्लभ मैंग्रोव वन है जो 1986-2002 के बीच में 90% तक बढ़ गया है जबकि शेष वनों का क्षेत्रफल लगातार घट रहा है। यह छोटा है परंतु इसका भलीभांति अध्ययन किया गया है। यहां 14 विशेष मैंग्रोव प्रजातियां पायी जाती हैं। जिसमें 30%

तालिका - 1

भारत में मैंग्रोव आच्छादन (क्षेत्रफल वर्ग किमी.)

राज्य/यूनियन टैरिटरी	सघन मैंग्रोव	मध्यम घना मैंग्रोव	छिछला मैंग्रोव	योग
आन्ध्र प्रदेश	0	15	314	329
गोवा	0	14	2	16
गुजरात	0	195	741	936
कर्नाटक	0	3	0	3
केरल	0	3	5	8
महाराष्ट्र	0	58	100	158
उड़ीसा	0	156	47	203
तमिलनाडु	0	18	17	35
पश्चिम बंगाल	892	895	331	2118
अण्डमान/निकोबार	255	272	110	637
दमन एवं दयू	0	0	1	1
पाण्डीचेरी	0	0	1	1
कुल योग	1147	1629	1669	4445

भारतीय वन सर्वेक्षण 2005

एविसेन्निया मेरिना, ब्रूगुएरा सिलेन्ड्रिका (17%) तथा ए.आफिसिनेलिस (16%) मुख्य हैं। अन्य प्रजातियों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। यहां जलीय जीव एवं झींगा की अनेक प्रजातियां प्रचुर मात्रा में मिलती हैं।

मन्डअपम द्वीप, तमिलनाडु में 3600 प्रजातियों के वनस्पति एवं जीव जन्तु पाए जाते हैं. यहां जैव विविधता भरपूर है, और यह स्थान जीव वैज्ञानिकों का स्वर्ग है तथा विश्व के सबसे धनी जैविक क्षेत्रों में से एक है।

उड़ीसा - भारत के कुल मैंग्रोव का 5% यहां पाया जाता है जो जैव विविधता से भरपूर है और यहां वृक्षों की 55 प्रजातियां पायी जाती हैं। महानदी डेल्टा और भिटरकनिका में 191.44 वर्गकिमी. में मैंग्रोववन है। पूर्वी भारत में फूलों की विविधता पापुआ न्युगुनिया के बाद विश्व में दूसरे स्थान पर है।

केरल - मैंग्रोव का इकोसिस्टम अत्यंत उपजाऊ और संवेदनशील होता है और सूक्ष्म परिवर्तनों (मनुष्य निर्मित या प्राकृतिक) से प्रभावित हो जाता है। केरल की 560 किमी. लंबी समुद्र तटीय रेखा है और यहां 41 नदियां समुद्र में मिलती हैं। पहले यहां मैंग्रोव 70,000 हेक्टर तक फैला था। लेकिन बाद में वृक्षों की कटान, तथा अन्य क्रिया कलापों से 1991 में 1671 हेक्टेयर रह गया। रिमोट सेंसिंग द्वारा एकत्र की गई जानकारी से ज्ञात होता है कि 1994 में 1095 हेक्टेयर मैंग्रोव ही केरल में रह गया है।

भारतीय वन सर्वेक्षण 2009 के अनुसार अब भारत में 4639 वर्गकिमी.मैंग्रोव वन हैं जबकि 2005 में यह 4445 वर्गकिमी. था। (तालिका1)। गुजरात, तमिलनाडु, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल में मैंग्रोव वन वृक्षारोपण तथा संरक्षण के कारण बढ़ गया है जबकि अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में 20 वर्ग किमी. का वन क्षेत्र सुनामी से नष्ट हो गया है। गुजरात में 55 वर्ग किमी. पश्चिमी बंगाल में 16 वर्ग किमी. उड़ीसा में 4 वर्गकिमी. तथा तमिलनाडु में 3 वर्गकिमी. की वृद्धि पायी गई है। गुजरात में संरक्षण का उल्लेखनीय कार्य हो रहा है। भारत उन विकासशील देशों में प्रमुख है जहां मैंग्रोव वन क्षेत्र बढ़ रहा है।

मैंग्रोव के क्षेत्र विशेष का निर्धारण ज्वार भाटे के परिवर्तन, भूमि की ऊंचाई बढ़ने तथा भूमि एवं जल की लवणता पर निर्भर करता है। (चित्र-3)

मैंग्रोव का उदगम बिन्दु - वैज्ञानिकों का मत है कि सबसे पहले मैंग्रोव प्रजाति इन्डो-मलायन भू भाग में पैदा हुई जहां विश्वभर में सबसे अधिक मैंग्रोव पाए जाते हैं। इनके तैरने वाले बीज बहकर भारत के पश्चिमी तट और पूर्वी अफ्रीका

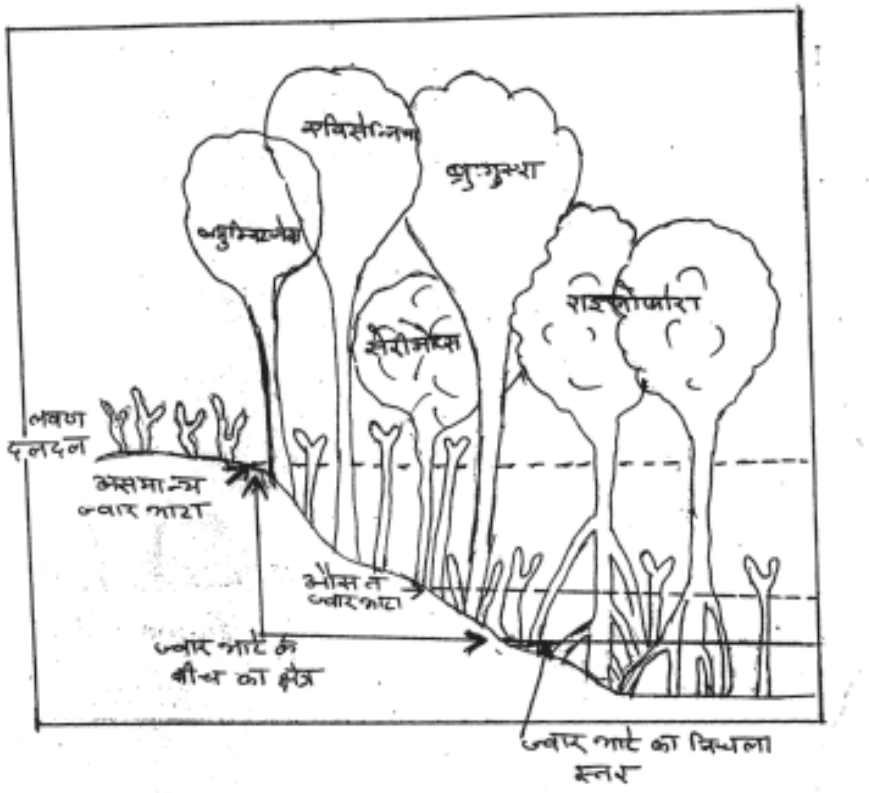

चित्र-3 - ज़्वार भाटा क्षेत्र में मैंग्रोव वृक्षों का पानी से भूमि तक विशेष क्षेत्र बनाना

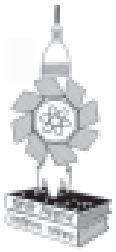

पहुंचे और अमेरिका के उत्तरी भाग से होते हुए केंद्रीय एवं दक्षिणी अमेरिका पहुंचे। इस समय के दौरान बीज पूरे कैरेबियन सागर में फैलकर तरंगों द्वारा अफ्रीका के पश्चिमी तटों तथा दक्षिण में न्यूजीलैंड के तटों पर गये। यही कारण हो सकता है कि पश्चिमी अफ्रीका और अमेरिका में बहुत कम प्रजातियां हैं, जो अन्य स्थानों पर पायी जाने वाली प्रजातियों से समानता रखती हैं।

मैंग्रोव का वर्गीकरण - विश्व में कुल 65 प्रजातियों के पेड़ पौधे मैंग्रोव में पाए गए हैं। यदि वीवीपेरी व सांस लेने वाली जड़ों को ध्यान में रखें तो केवल 55 प्रजातियां हैं। इनमें से अधिकतर प्रजातियां दक्षिण पूर्वी एशिया तथा अफ्रीका के पूर्वी तटों पर मिलती है। भारत के पूर्वी तटों पर 29 कुलों की 59 प्रजातियां मिलती है। जबकि अंडमान निकोबार आइलैंड में 32 जातियों के अंतर्गत 48 प्रजातियां मिलती हैं। इनमें राइजोफोरा एपिकुलेटा, रा.म्यूक्रोनाटा (लाल मैंग्रोव) मुख्य हैं। मैंग्रोव का एक कुल डिवीजन पोलीपोडिओफाइटा (फर्न) में आता है शेष सभी मेग्रोलियोफाइटा (एन्जीओस्पर्म) के अंतर्गत हैं। केवल आर्डर म्रिटेल्स तथा राइजोफोरेल्स में ही 25% मैंग्रोव के कुल तथा 50% प्रजातियां आ जाती हैं। ऐसे कुल जिसमें केवल मैंग्रोव पाए जाते हैं चार हैं– एगिलिटिडेसी, नाइपेसी, एरिसीनिएसी, तथा पेलीसिरेसी। मैंग्रोव वर्गीकरण पर मुख्य कार्य टामलिन्सन (1986) तथा ड्यूक (1192) ने किया है। (तालिका 2)।

मैंग्रोव की मुख्य प्रजातियां जो पूर्णतः मैंग्रोव (True Mangrove) हैं केवल मंगल में ही पायी जाती हैं। यह मैंग्रोव बनाने में मुख्य भूमिका निभाती हैं और अनेक स्थानों पर शुद्ध रुप से पायी जाती हैं। इनमें प्रजनन वीवीपेरस होता है। यह अपने भूमि पर रहनेवाले रिश्तेदारों से वर्गीकरण में अलग कुल या जाति में रखे गये हैं। सहायक मैंग्रोव या कम महत्व की प्रजातियां कभी भी अकेले शुद्ध रुप में नहीं पायी जाती हैं। यह लवण सहनशील होने के साथ ही समुद्र या भूमि की ओर संक्रमण क्षेत्र बनाती हैं।

मैंग्रोव की विशेषताएं -

मैंग्रोव समुद्र तटों पर जहां पानी में नमक या लवण अधिक होता है तथा लगातार ज्वारभाटा आता रहता है, पाए जाते हैं, जड़ों के पानी में डूबे रहने के कारण अनेक परिवर्तन आ जाते हैं जिससे वह इस विषम परिस्थिति में जीवित रह सकें।

1. विशिष्ट जड़ें :-

मैंग्रोव की जड़ें अस्थिर जल में केवल सहारा ही नहीं देती हैं अपितु तूफान एवं लहरों को झेलने में भी सहायता देती है। यह जड़ें आक्सीजन की कमी वाली भूमि में सांस भी लेती हैं। जड़ों की सतह पर विशिष्ट कोशिकाएं लेन्टीसेल्स पाए जाते हैं जो केवल हवा को अंदर जाने देते हैं और लवण एवं जल को रोक देते हैं। इन जड़ों के अंदर हवा भरने के लिए बड़े-बड़े रिक्त स्थान पाए जाते हैं (एरेनकाइमा) (चित्र 4 क,ग)। यह केवल हवा के आवागमन के साथ उसका भंडारण भी करते हैं, जो जड़ों के पानी में डूब जाने की अवस्था में काम आती है। पोषक तत्व सोखने वाली जड़े महीन होती हैं और दलदलीय भूमि की सतह पर निकलती हैं (चित्र 4 घ)। इनके साथ ही अनगिनत पतली, पेन्सिल जैसी न्यूमेटोफोर (हवा रखने वाला) निकलती हैं जिनमें असंख्य छिद्र होते हैं (चित्र 4 क)। तीन मीटर ऊंचे वृक्ष में 10,000 तक न्यूमेटोफोर हो सकते हैं। यह सोन्नरिटा में शंकु के आकार की होती है। ब्रूगुएरा में घुटने की आकार की ''नीरुट'' बनती हैं जो सतह से निकल कर छल्ला बनाती हुई फिर मुड़ जाती हैं। राइजोफोरा जाति में तने तथा शाखाओं से निकलकर जड़े सीधे नीचे आती हैं जो वृक्ष को सहारा प्रदान करने के साथ ही हवा भी सोखती है।

2. आक्सीजन की कमी के लिए अनुकूलन : लाल मैंग्रोव (राइजोफोरा मेन्गल), जो अत्याधिक विषम परिस्थितियों में भी जीवित रह सकता है, अपने तने को पानी के ऊपर स्टिल्ट जड़ों की सहायता से खड़ा रखता है और जड़ में पाए जाने वाले छिद्रों (लेन्टीसेल्स) की सहायता से हवा सोखता है। इसकी जड़ें पानी के ऊपर खंबे की तरह खड़ी रहती हैं। काला मैंग्रोव ऊंची भूमि पर उगता है इसमें से न्यूमेटोफोर निकलते हैं जो विशेष एरेनकाइमा के बने होते हैं और आक्सीजन को पेड़ में जाने में सहायता करते हैं। यह जड़ें 30 से.मी. से 3 मी. तक ऊंची हो सकती हैं। (चित्र 4 घ)

3. नमक का कम अंर्तग्रहण : पानी में लगातार डूबे रहने के कारण लाल मैंग्रोव की जड़ों में सुबेरिन की मोटी पर्त पायी जाती हैं जो अत्यंत महीन छलनी का कार्य करती है और नमक को अंदर जाने से रोकती है। वृक्ष की जांच करने से पता चलता है कि 90-97% तक नमक जड़ों से निकाल दिया जाता है (राइजोफोरा, सेरीओप्स, ब्रूगुएरा)। जो नमक पेड़ के अंदर रह जाता है वह छाल या पुरानी पत्तियों में भेज दिया जाता है जिसे पेड़ बाद में गिरा देता है (एवीसेन्निया, सेरीओप्स, सोनरेशिया) लाल मैंग्रोव लवण को वेक्योल (Vacuole) में भी एकत्र करता है। सफेद (सलेटी) मेनग्रूव नमक को सीधे उत्सर्जित कर देते हैं। इनकी पत्तियों के आधार पर नमक की ग्रंथियां पायी जाती हैं जिनसे नमक उत्सर्जित होता रहताहै। इनकी पत्तियां नमक के

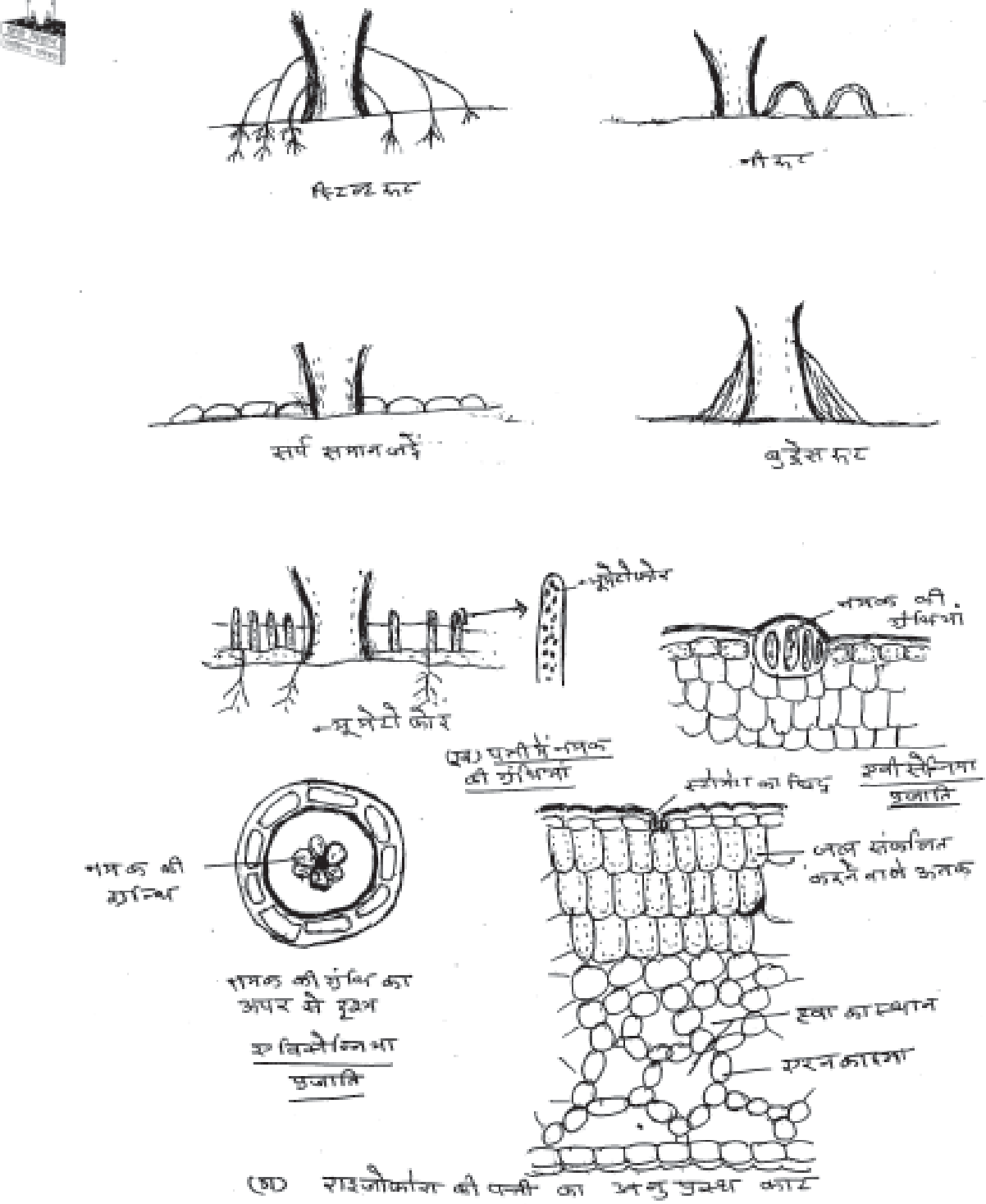

चित्र-4 - मैंग्रोव में हवाई जड़े तथा पत्तों की संरचना
(क) विशिष्ट जड़ें

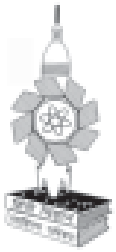

सफेद कणों से ढकी रहती हैं (चित्र 4ख) (एवीसेन्निया, सोनरेशिया, एकेन्थस)।

4. **पत्तियों की विशिष्ट रचना :** मैंग्रोव के लिये पानी अनमोल है। पानी की प्रत्येक बूंद को प्रयोग करने से पहले उसमें से नमक निकालने के लिए पेड़ों को अत्यधिक ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। अतः इन्हें जीरोफाइट की तरह पानी को बचाए और बनाए रखने के उपाय अपनाने पड़ते हैं। मैंग्रोव की पत्तियां मोटी, चिकनी, मोमयुक्त, कांटेदार तथा रोमयुक्त होती हैं तथा पत्ती की ऊपरी सतह पर क्युटिकिल की मोटी पर्त होती है जिससे ऊपर सतह चिकनी और चमकदार होती हैं। एरनकाइमा ऊतक पूर्णतया विकसित व अधिक संख्या में पाए जाते हैं (चित्र- 4 ग)। नाइपा जाति के पौधों में न तो खड़े तने होते हैं और न ही न्यूमेटोफोर पाए जाते हैं परंतु उनकी पत्तियों की निचली सतह फूली होती है और वहां एरनकाइमा ऊतक पाए जाते हैं जिसमें हवा भर जाती है। अनेक प्रजातियों जैसे सोन्नेरेशिया एपीटाटा, सो.एल्बा, ल्यूमनीटजेरा रेसीमसा, साल्वा डोरा पेरी सिका आदि में लवणता के प्रभाव को कम करने के लिए पत्तियां मोटी और गद्दीदार हो जाती हैं जिसमें पानी प्रचुर मात्रा में एकत्र रहता है। इन पत्तियों में नमक ज्यादा होता है परंतु पानी की मात्रा अधिक होने से उसका विषैला प्रभाव नहीं होता है। पत्तियों में टैनिन भी पाया जाता है।

5. पानी की कम हानि : मीठे पानी की उपलब्धता कम होने के कारण मैंग्रोव अपनी पत्तियों से कम पानी को वाष्पित करते हैं। इनके स्टोमेटा पत्ती की सतह पर दबे रहते हैं, यह तेज धूप में पानी की हानि को रोकने के लिए स्टोमेटा को इस प्रकार नियंत्रित करते हैं कि पानी का वाष्पन कम हो।

6. पोषक तत्वों की कमी : मैंग्रोव इकोसिस्टम में वनस्पतियों का पोषक तत्वों को ग्रहण करना अत्यधिक कठिन होता है। मिट्टी के पानी में डूबे रहने के कारण मुक्त ऑक्सीजन कम रहती है। ऑक्सीजन रहित बैक्टीरिया नत्रजन, घुलनशील लोहा, अकार्बनिक फास्फेट्स, सल्फाइड्स और मीथेन गैस निकलते हैं जो मिट्टी को पोषकता को कम कर देते हैं। यहां पर तीक्ष्ण गंध आती हैं। पानी से बाहर खड़ी विशेष ज़ड़े (Prop roots) वातावरण से सीधे गैस सोखती हैं तथा जड़ें मिट्टी से लौह तत्व लेती हैं जो उनके भोजन बनाने के काम आता हैं।

7. बीजों तथा बीजांकुरों का अनुकूलन :- मैंग्रोव ने अपने बीजों को इन कठिन परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए विशेष उपाय किये हैं। बीज पानी द्वारा फैलने के कारण तरणशील होते हैं। कई मैंग्रोव वीवीपेरस होते हैं (लाल मैंग्रोव) अर्थात बीज पेड़ पर लगे रहने की स्थिति में ही परिपक्व हो जाते हैं और उनमें अंकुरण हो जाता है। अंकुर फल के अंदर ही बढ़ता है (एगीलिटिस, एवीसेंजिया, एवं एगीसीरास) या उसके बाहर बढ़ता है (राइजोफोरा, सेरिओप्स, ब्रूगुएरा एवं नाइपा) और अपना भोजन स्वयं बनाने में सक्षम होता है (चित्र 5)।

मैंग्रोव के बीज में इतना भोजन होता है कि वह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी लंबे समय तक जीवित रह सकता है। यह सूखे की अवस्था में एक वर्ष तक सुषुप्तावस्था में पड़ा रहता है और अनुकूल परिस्थितियों में ही उगता है। वयस्क बीज पानी के द्वारा दूर-दूर तक फैल जाता हैं। जब बीजांकुर में जड़ विकसित होने का समय आता है बीज का घनत्व बदल जाता है और लंबे बीज पानी के समानान्तर न तैर कर खड़े तैरने लगते हैं। इस अवस्था में यह पानी में डूबी मिट्टी में पहुंचकर जम जाते हैं। यदि उचित वातावरण नहीं मिलता है तो बीज पुनः अपना घनत्व बदलकर तैरकर नए स्थान को तलाश करते हैं।

यह आश्चर्यजनक है कि तरुण नवोद्भिद बीज पूर्णतया जल में डूबे रहकर भी जीवित रहते हैं जब तक कि वह इतने बड़े न हो जाएं कि उनमें हवाई जड़ें निकल आएं, जिसमें एक से दो वर्ष लग जाते हैं। इस अंतराल में वह तने की एरनकाइमा पर हवा के लिए निर्भर रहते हैं।

मैंग्रोव का पारिस्थितिकी तंत्र (इकोसिस्टम)

मैंग्रोव तंत्र के मुख्य वृक्ष :- मैंग्रोव किसी एक विशेष जाति के वृक्ष नहीं हैं अपितु यह विभिन्न जातियों के वृक्षों का समूह है. जो गर्म, समुद्री, लहरों के बीच के वातावरण को सहने में सक्षम है।

(1) **राइजोफोरा एपीकुलाटा (लाल मैंग्रोव) :-** यह सदाबहार वृक्ष अग्रिम पंक्ति की मैंग्रोव प्रजाति है और छायादार स्थानों पर ज्वारभाटे के क्षेत्र की तुलना में सुगमता से उगता है। यह 3-5 मी. लंबा, पत्तियां 10-20 से.मी. लंबी और 2.7-7.5 से.मी. चौड़ी होती हैं। अंकुरित बीज 10-15 से.मी. लंबे होते हैं (चित्र 5 क)।

(2) राइजोफोरा म्यूक्रोनाटा (लाल मेनग्रूव) : यह मैंग्रोव तंत्र की लाभकारी अग्रिम पंक्ति प्रजाति है और समुद्र तट जहां ज्वार भाटे से सुरक्षित रहता है, उगता है। इसकी बढ़त तेज होती है और यह आर्थिक दृष्टि से लाभकारी वृक्ष है। यह रा.एपीटाला के समान है अंतर केवल इसकी पत्तियों और अंकुरित बीज में हैं। पत्तियां थोड़ी चौड़ी एवं अंकुरित बीज 50-60 से.मी. लंबे और भाले केसमान होते हैं (चित्र 5 ख)।

(3) ब्रूगुइएरा जाईम्नोराइजा (चौड़ी पत्ती, नारंगी मैंग्रोव) :

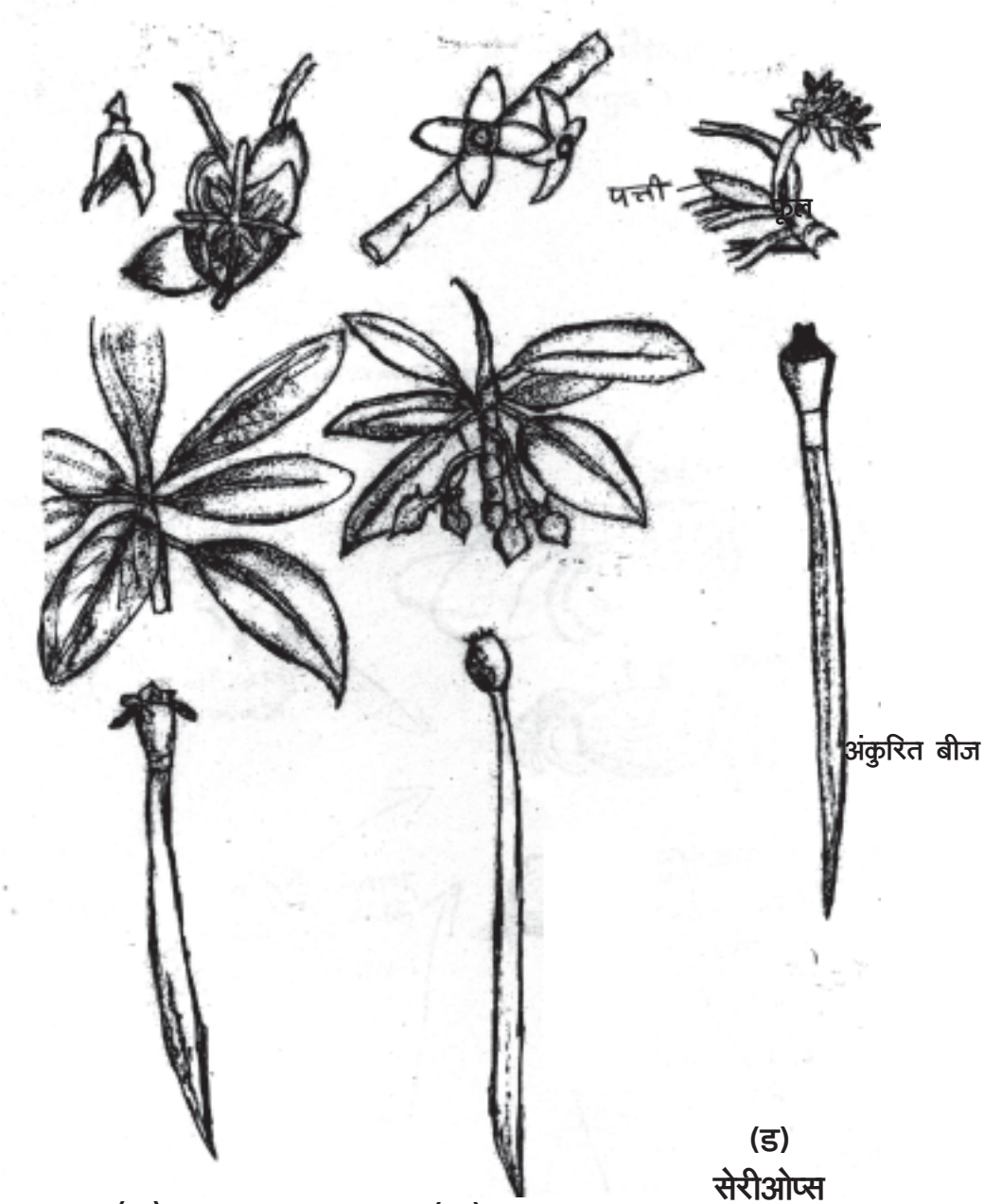

चित्र-5 – मैंग्रोव वृक्षों की पत्ती, फूल एवं अंकुरित बीजों के आधार पर पहचान

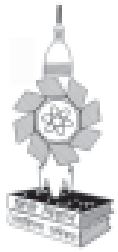

यह सदाबहार वृक्ष 8-12 मी. ऊंचाई तक बढ़ता है। पत्तियां 9-12 से.मी. लंबी और 3.5-4.5 से.मी. चौड़ी, जड़ें रस्सी के समान, मोटी और हवा से भरी ''केबिल रुट'' कहलाती है।

(4) ब्रू. पारवीफ्लोरा (छोटी पत्ती नारंगी मैंग्रोव) :- यह मैंग्रोव तंत्र में विशेषतया पिछली पंक्ति की प्रजाति है, झाड़ीनुमा वृक्ष, 3-5 मी. ऊंचा, उपरोक्त के समान केबिल रुट, पत्तियां उच्च रक्त चाप में लाभकारी तथा टेनिन उत्पादित करने वाला, आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण वृक्ष है।

(5) सोन्नरेशिया एल्बा (मैंग्रोव एपिल) : यह 30 मी.तक ऊंचा वृक्ष, दलदल विहीन, ज्वार भाटा आने के क्षेत्र में उगने वाला, अग्रिम पंक्ति मैंग्रोव प्रजाति है और खुले स्थानों पर जहां तरंगे आती है, उगना पसंद करता है। इसमें मोटे, नुकीले और लंबे न्यूमेटोफोर (विशिष्ट जड़ें) होते हैं, फल सेब के समान होते हैं जिन्हें खाने और अचार बनाने में प्रयोग करते हैं।

(6) सेरीओप्स टागल (स्पर मैंग्रोव) :- झाड़ी या वृक्ष 3-5 मी. ऊंचा, पत्तियां 2.5-10 से.मी. लंबी, 1.7-5.0 से.मी. चौड़ी, आधार पर पतली, लाल भूरी निचली सतह, अंकुरित बीज पतले, 10-15 से.मी. लंबे, लवणता के लिए अत्यंत सहनशील, मैंग्रोव तंत्र में सर्व व्याप्त प्रजाति है (चित्र 5 ग)

(7) एवीसेन्निया मेरिना : एविसेन्निया प्रजाति मैंग्रोव तंत्र में सबसे अधिक लवण सहन की क्षमता रखती है। झाड़ी नुमा पेड़ 3-7 मी. ऊंचे होते हैं। यह पूरी तटीय रेखा पर उगनेवाली अत्यधिक प्रबल प्रजाति है।

(8) ए. ऑफीसिनेलिस : एविसेन्निया की तीन प्रबल प्रजातियों में यह सबसे लंबी 8-14 मी. ऊंची है। लकड़ी जलाने, घर बनाने में, पत्तियां जानवरों के चारे में प्रयुक्त होती हैं। कुछ स्थानों पर टेनिन भी निकाला जाता है।

(9) एगिसीरास कारनीकुलेटम (नदी मेनग्रूव) : इसकी लवण सहनशीलता कम है और यह उन स्थानों पर उगता है जहां ताजा पानी समुद्र में मिलता रहता है। यह घनी, पुष्पों से भरी झाड़ी, दलदल विहीन, ज्वार भाटे के आने के स्थान पर उगता है, जनवरी-मार्च में बीज बनते हैं, फल मुड़े हुए, सिरे पर अत्यंत नुकीले होते हैं। नेक्टर से उत्तम गुणवत्ता का शहद बनता है।

(10) फोनिक्स पेड्यूलोसा (समुद्री डेट) : यह पाम की प्रजाति समुद्री डेट कहलाती है और साधारण खजूर की रिश्तेदार है। यह लवणता के लिए सहनशील है और परिपक्व, छिद्रिल, दृढ़ भूमि में उगती है, जहां ज्वार भाटा आता रहता है। यह सुंदरबन में मुख्यतः पायी जाती है और डेल्टा के ऊपरी भागों में घना जंगल बनाती है जहां बाघ को रहने के लिए प्राकृतिक आवास मिलता है। इसके फल साधारण खजूर से छोटे और पकने पर काले, चमकीले होते हैं। यह मार्च-जुलाई तक फलते हैं। यह पूर्वी तटों पर प्राकृतिक रुप से मिलती है। इसकी लकड़ी जलाने तथा झोपड़ी बनाने के काम आती है।

(11) नाइपा फ्रूटीकेंस (गोलपत्ता) : यह पाम के गुणों वाली प्रजाति है और नारियल के पेड़ से आकार में कम होती है। यह अब सुंदरबन में दुर्लभ है, पहले यह बहुतायत में पश्चिम बंगाल में मिलती थी लेकिन इसकी पत्तियों के अत्याधिक दोहन के कारण यह लुप्त प्राय हो गई हैं। यह अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में प्रचूर मात्रा में उपलब्ध है और उगने के लिए भलीभांति दृढ़, नम भूमि, ज्वार भाटे के क्षेत्र जहां लवणता कम या मध्यम हो और ताजा पानी मिलता हो, उगती हैं। यह साल भर फलती रहती हैं।

(12) हेरीटिएरा फोम्स (सुंदरी): पश्चिमी बंगाल में इसको आम भाषा में 'सुंदरी' कहा जाता है. गंगा के डेल्टा में इसके बहुतायत में मिलने कारण ही नाम ''सुंदरबन'' पड़ा है। इसकी लकड़ी अत्यंत कीमती है। यह सागौन से भी महंगी होने के कारण अत्यधिक दोहन से अब पश्चिमी बंगला में दुर्लभ हो गयी हैं।

(13) एकेन्थस इलिसीफोलियस : - यह सुंदर पेड़ मेनग्रुव तंत्र में पिछली पंक्ति में रहता है। इसकी झाड़ीनुमा आकार और कंटीली पत्तियां अलग स्वरुप देती हैं। यह विभिन्न प्रकार की भूमि में रहने की क्षमता रखता है जैसे कीचड़युक्त भूमि, कंकड़ युक्त या मेड़ जहां बाढ़ का पानी भर जाता है और लवणता होती है। इसका व्यापक स्वरुप एवं हवा में निकली जड़ें भूमि क्षरण को रोकती हैं। इसकी लकड़ी जलाने के काम आती है। फूल नीले होते हैं जिनके नेक्टर से शहद बनता है। फूल और पत्तियां सजावट में प्रयुक्त होते हैं।

मैंग्रोव तंत्र के जीव-जंतु : मैंग्रोव अपनी विशिष्ट जड़ों और अन्य शारीरिक अनुकूलन के आधार पर समुद्र के किनारे घना जंगल बनाते हैं। जहां विभिन्न प्रकार के जीव जंतुओं के लिए संरक्षित वातावरण रहता है। इसमें अनेक प्रकार के जीव जैसे समुद्र के जीव, लहरों के बीच रहने वाले जीव तथा थलचर आदि रहते हैं। थलचर में विभिन्न कीट, सरीसृप, उभयचर, पक्षी और स्तनधारी जीव हैं जो इस तंत्र का विशेष गुण है।

जलीय जीव : यहां विभिन्न प्रकार की मछलियां, केकड़े, झींगा, समुद्री केकड़े, सीप घोंघे तथा सूक्ष्म जीव जैसे बैक्टीरिया, कवक, शैवाल आदि।

केकड़े : केकड़े भूमि में सुरंग बनाते हैं जो उन्हें आश्रय देता है और परभक्षियों से सुरक्षा प्रदान करता है। यह तलछट का भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन करते हैं जो

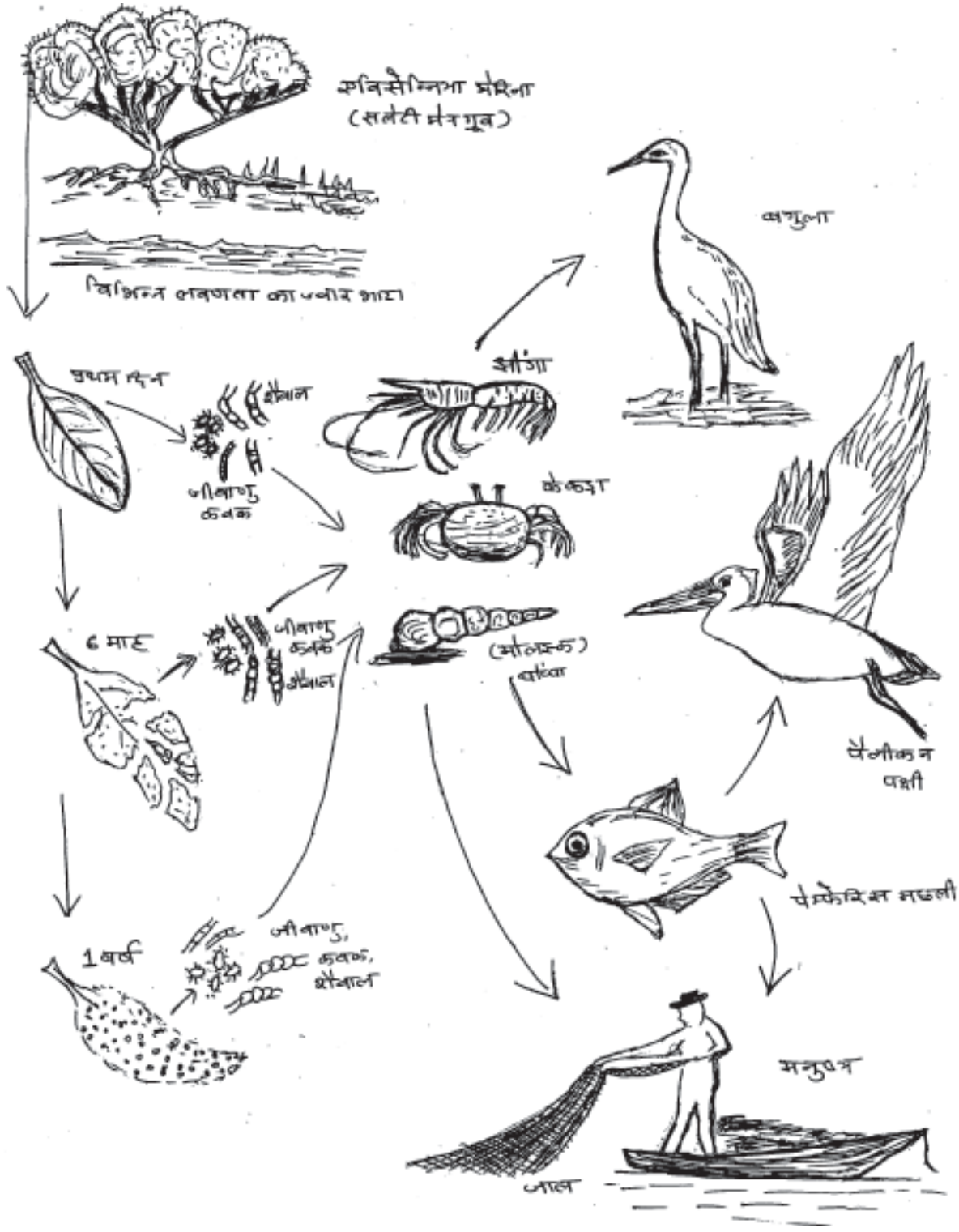

चित्र-6 – मैंग्रोव पारिस्थितिकी तंत्र की भोजन श्रृंखला

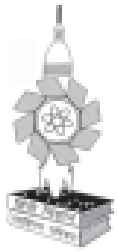

अन्य जीवों को भी प्रभावित करता है। यहां केकड़ों की विविधता सबसे अधिक है और लगभग 275 प्रजातियां 6 कुल के अंतर्गत ब्रेकीउरन्स की मिलती हैं। कीनिया के मैंग्रोव में ही 18 केकड़ों की प्रजातियां हैं जो विशेष रुप से सुरंग बनाती हैं। यह ''इकोसिस्टम इंजीनियर'' हैं जो भोजन की उपलब्धता एवं गुणवत्ता को परिवर्तित करने के साथ ही आश्रय एवं शरणस्थल को बदलकर अन्य जीवों के लिए नये आवास स्थल बनाते हैं। केकड़े भूमि की सतह के नीचे मिट्टी में सुरंगों का एक ऐसा जाल बना देते हैं जिसमें बहते पानी द्वारा इस मुख्यतः ऑक्सीजन रहित भूमि में घुलनशील पोषक तत्वों एवं वायु का संचार होता है। केकड़ों की बिल बनाने की प्रक्रिया के कारण मैंग्रोव क्षेत्र में भूमि की प्रकृति एवं गुण तथा लघु स्तर पर जल की उपस्थिति, फैलाव एवं बहाव के ढंग में परिवर्तन हो जाता है। पारिस्थितिकी तंत्र में इस प्रकार केकड़े (या अन्य कोई जीव) द्वारा किया गया उल्लेखनीय भौतिक, रासायनिक एवं जैविक परिवर्तन 'बायोटरबेशन' कहलाता है। यह मैंग्रेव में जीवन प्रदान करने वाली प्रक्रिया है।

थलचर : जंगल में पाए जाने वाले सभी प्रकार के स्तनधारी जीव, सूखे जंगल के जानवर, नम और निचली भूमि के जानवर, दलदलीय स्थान के जानवर मैंग्रेव में पाए जाते हैं।

अंडमान और निकोबार आईलैंड के जीव जंतुओं का परीक्षण करने पर स्तनपायी 8 प्रकार, पक्षी 53 प्रकार, सरीसृप 7 प्रकार, उभयचर 3 प्रकार, मछलियां 253 प्रकार, पोलीकीट्स 13 प्रकार, आर्थोपोड्स 410 प्रकार के तथा मीओफोना 53 प्रकार के मिले हैं। केरल के मैंग्रोव में 489 प्रकार के जीव जन्तु मिले हैं जिसमें 144 प्रकार के अकशेरुकी जीव हैं। 122 प्रकार की मछलियां, 14 प्रकार की हरपीटोफोना, 196 प्रकार की चिड़ियां, और 13 प्रकार के स्तनपायी जीव हैं। अकशेरुकी जीवों में मुख्य हैं- अर्कनिडा 24, हिमेनोप्टेरेन्स 11, ओडोन्टा 23, लेपिडोप्टेरा 33, मोलस्का 21, एनीलिडा 7 और क्रस्टेसिआ 25। ब्राजील में एकत्र किए गए आंकड़ों से पता चलता है कि वहां के जलीय अकशेरुकी जीव मुख्यतया 3 फाइलम स्नायीडेरिआ, एनीलिडा तथा आर्थोपोडा के अंतर्गत हैं जिसमें क्रस्टेसियन (केकड़े और समुद्री झींगा) में अत्याधिक विविधता है। पानी जहां ज्यादा लवणीय है वहां इनकी बहुतायता है और क्रमशः लवणता के कम होने पर इनकी संख्या कम हो रही है।

सूक्ष्मजीव :-

बैक्टीरिया : यद्यपि मैंग्रोव पारिस्थितिकी तंत्र में कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में मिलते हैं परंतु इसमें पोषक तत्वों विशेषतः नत्रजन एवं फास्फोरस का अभाव रहता है। सूक्ष्म जीवों जैसे बैक्टीरिया एवं कवक की रासायनिक क्रियाएं पोषक तत्वों के आवागमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आस्ट्रेलिया के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में कुल सूक्ष्मजीवों के बायोमास का 91% कवक व बैक्टीरिया, 7% शैवाल तथा 2% प्रोटोजोआ मिले हैं। अनेक मैंग्रोव वृक्षों की जड़ की सतह से नत्रजन स्थिरीकरण करने वाले बैक्टीरिया की प्रजातियां जैसे एजोस्पिरलम, एजोटोबेक्टर, राइजोबियम, क्लोस्ट्रिडियम, क्लैबसिएला आदि मिली हैं। इसके अतिरिक्त विब्रो, स्टेफाइलोकोकस, बेसिलस, एन्टरोबेक्टर, स्यूडोमोनास, क्रोमेटिएसी (बैंगनी सल्फर बैक्टीरिया), रोडोस्पाइरेलेसी (बैंगनी सल्फर विहीन बैक्टीरिया), रोडोबेक्टर, रोडोस्यूडोमोनास आदि की प्रजातियां पायी गयी हैं।

नत्रजन स्थिरीकरण : यह मैंग्रोव तंत्र में एक आम प्रक्रिया है और उच्च स्तर पर मृत, सड़ती पत्तियों, हवाई जड़ों, जड़ों के चारो ओर की भूमि (राइजोस्फेयर) तने की छाल, तलछट पर घनी साइनोबैक्टीरिया की पर्त तथा तलछट के अंदर पायी गई है।

फोस्फेटिका बैक्टीरिया : यह बैक्टीरिया बहुत महत्वपूर्ण है और अघुलनशील फास्फेट को घुलनशील में परिवर्तित करके पेड़ों तक पहुंचाते हैं। मेक्सिको के शुष्क मैंग्रोव तंत्र के वृक्षों की जड़ों से 12 प्रकार के फास्फेटिका बैक्टीरिया मिले हैं।

पी.जी.पी.बी. : पौधों की वृद्धि के लिए उत्प्रेरक का कार्य करने वाले बैक्टीरिया सूखे मैंग्रोव वनों में वृक्षों की पुनः स्थापना में मुख्य भूमिका निभाते हैं। मैंग्रोव पारिस्थितिकी तंत्र में वनस्पति, सूक्ष्म जीव तथा पोषक तत्वों का आपस में संबंध एक मुख्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा आवश्यक तत्वों का संरक्षण तथा पुर्ननिर्माण होता है। मृत वनस्पति के सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटित होने से नत्रजन, फास्फोरस तथा अन्य पोषक तत्व पौधों को मिलते हैं। पौधों की जड़ों से निकलने वाले द्रव सूक्ष्मजीवों के भोजन का कार्य करते हैं और राइजोस्फेयर में पाए जाने वाले पी.जी.पी.बी. के द्वारा नवांकुरों को शोधित करके वनों को पुर्नस्थापित किया जा सकता है।

कवक : मैंग्रोव की जड़ों के अंदर अनेक प्रकार के कवक रहते हैं। इनसे उत्पन्न रसायनों का प्रयोग औषधि एवं कृषि उद्योग में बहुतायत में होता है। समुद्री मैंग्रोव कवक (एन्जाइम) तथा बायोएक्टिव यौगिकों का प्रमुख स्रोत है। उदाहरण के लिए कैंसर रोधी औषधि **'टेक्सोल'** जिसको पहले समझा जाता था कि केवल टेक्सस वृक्ष ही उत्पन्न करता है अब अल्टरनेरिया, फ्यूसेरियम, मोनोकीटा, पेस्टालोशिया, पेस्टालोशिओपसिस, पिथोमाइसिस तथा टेक्सोमाइसिस जाति

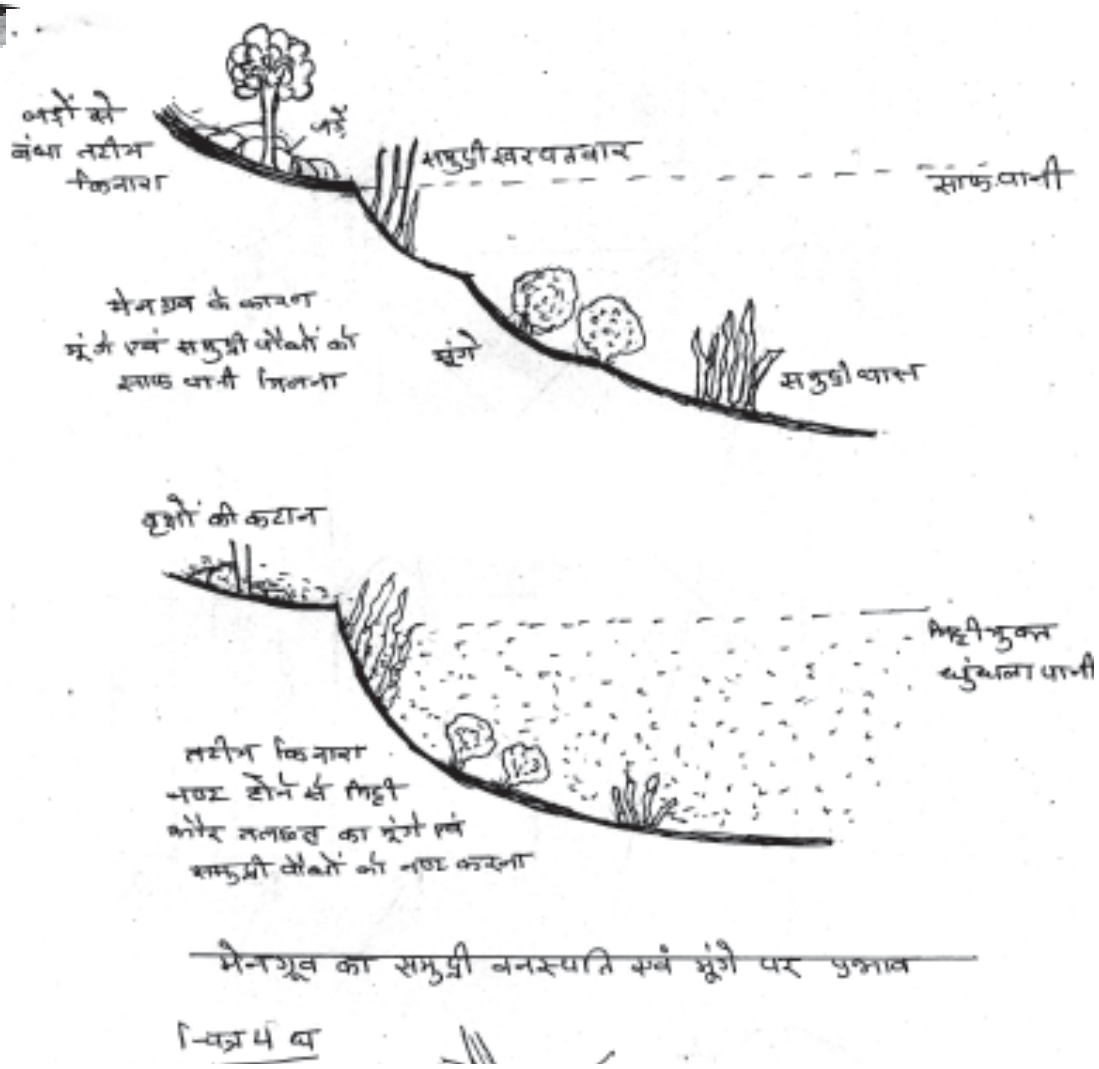

मेनग्रूव का समुद्री वनस्पति एवं मूंगे पर प्रभाव

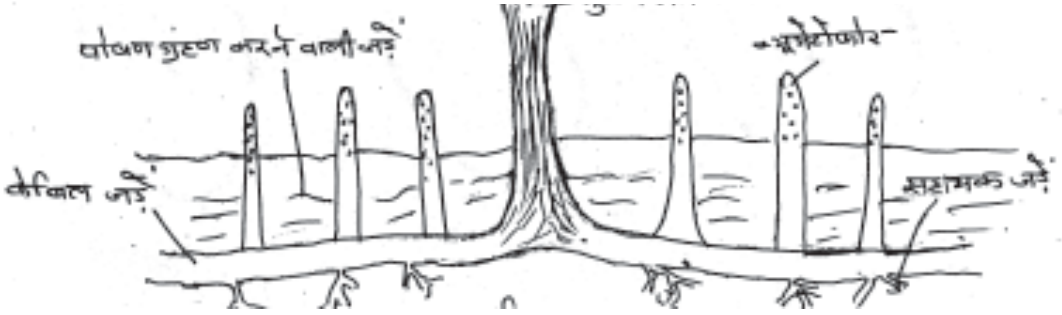

चित्र-7 - मैंग्रोव वृक्ष का पूर्ण
विकसित जड़ तंत्र

की, जड़ों के अंदर रहने वाली, कवक में पायी गई है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की खाने योग्य मशरुम तथा जहरीले मशरुम एवं स्पांज भी मिलते हैं जो दृष्टिभ्रम पैदा करने वाले यौगिकों का प्रमुख स्रोत हैं. यह रसायन औषधि के काम आते हैं।

मैंग्रोव से लाभ : मैंग्रोव तंत्र आर्थिक तथा परिस्थितिकी दृष्टि दोनों से लाभकारी है। यहां पाए जाने वाले वनस्पति मनुष्य तथा पशु पक्षियों, समुद्री जीवों सभी के लिए लाभदायक हैं।

पारिस्थितिकी पर प्रभाव :

1. प्राकृतिक आवासः मैंग्रोव तंत्र में केकड़े, समुद्री घोंघे हवा में निकली जड़ों पर रहते हैं। महीन जड़ों का जाल पानी में छोटी मछलियों और झींगा मछली को परभक्षी से बचाता है। पानी में डूबी जड़ों पर शैवाल, ब्रोन्केल, सीप, स्पांज, ब्रायोजोन्स आदि, जिनको पानी में लटके रहने के लिए कड़ी सतह चाहिए, पाए जाते हैं। झींगा मछली और लोबस्टर कीचड़ युक्त भूमि में घर बनाते हैं। पानी में गिरी पत्तियां सूक्ष्म जीवों तथा जीव जंतुओं के लिए भोजन का कार्य करती है (चित्र-6)। जब यह बहकर मूंगे की चट्टान में जाती है तब केकड़े और अन्य जीव इनको तोड़ते हैं। इसके बाद इन्हें सूक्ष्म जीव तोड़कर खनिज बनाते हैं। छोटे-छोटे मौथ न्यूमेटोफोर में पाए जाते हैं जो पत्तियों को खाते हैं।

2. पानी का प्राकृतिक शुद्धिकरण : पानी के अंदर जड़ों तथा शाखाओं पर अनेक जीव जैसे ब्रोन्केल, स्पांज, शैलफिश (फिल्टर फीडर) आदि बहुतायत में रहते है जो पानी में से कार्बनिक पदार्थ और कीचड़ (सिल्ट) को साफ करते हैं। साफ पानी वापिस समुद्र में जाता है और यह मूंगें की चट्टानों के तंत्र की बढ़वार और स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होता है।

3. समुद्र एवं नदी तटों को दृढ़ करना : मैंग्रोव वृक्षों की जड़ें कीचड़ और बालू को समुद्री तरंगों तथा नदी की लहरों में बहने से बचाती है।मैंग्रोव वृक्ष धीरे-धीरे मिट्टी को पुर्नजीवित करते हैं। जड़ों के अंदर जाने से और हवा के बहाव से मिट्टी में सुधार होने लगता है और दूसरे पेड़ जड़ पकड़ने लगते हैं। इस प्रकार यह भूमि धीरे-धीरे वृक्षों के उगने के अनुकूल होने लगती है। मैंग्रोव तेज हवाओं, तूफान और सुनामी से होने वाली हानि को कम करते हैं। इनका वृहत् जड़तंत्र लहरों की

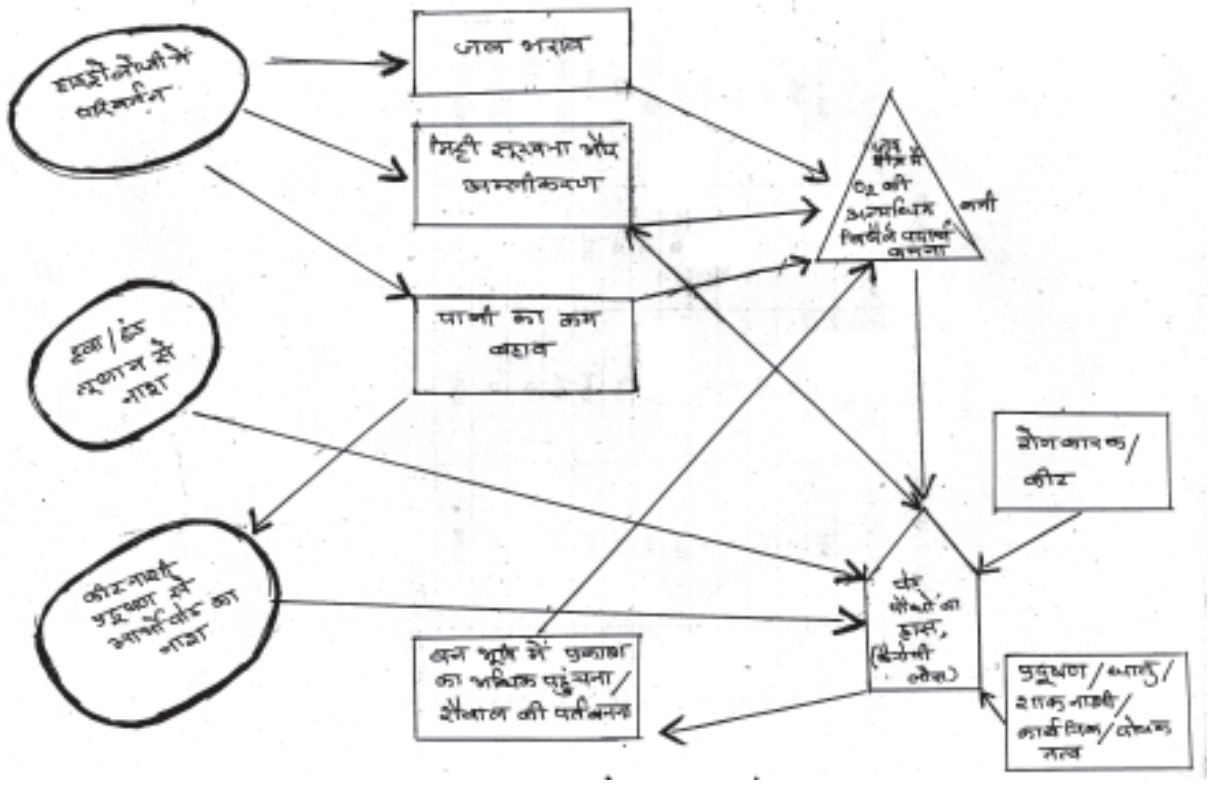

चित्र-8 – मैंग्रोव वनों को प्रभावित करने वाले कारक एवं उनका वनस्पतियों पर प्रभाव

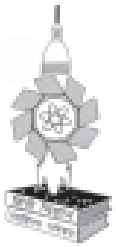

तीव्र गति को अवरोध प्रदान करता है और उससे तट पर होने वाली हानि को कम करता है। यहां लहरों की गति कम होने पर उनका तलछट तट पर रह जाता है और इन क्षेत्रों के तलछट में अनेक प्रकार के भारी धातुओं के तत्व पाए जाते हैं। मैंग्रोव को नष्ट करने पर यह भी पानी में ऊपर आ जाते हैं और समुद्री पानी तथा जलीय जीवों को प्रदूषित करते हैं (चित्र 7)।

4. मैंग्रोव की पत्तियां वहां के परिस्थितिकीय तंत्र में बहुत महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। यह अमीनो एसिड, विटामिन और खनिजों से भरपूर होती हैं जो समुद्री जीवों एवं तटीय पशुओं के भोजन का मुख्य अंग है (चित्र-6)। मैंग्रोव की पत्तियां प्रतिवर्ष सड़कर हजारों टन कार्बनिक पदार्थ बनाती है जो भूमि को उपजाऊ बनाने के साथ ही समुद्र एवं नदी के मुहाने में रहने वाले अनेक जीवों को भोजन प्रदान करती हैं। यह लवण एवं आयोडीन से भरपूर होने के कारण पशुओं के चारे का उत्तम स्रोत हैं।

आर्थिक लाभ :

1. मैंग्रोव वृक्षों से अनेक रसायन मिलते हैं जिनका उपयोग औषधियों में या विभिन्न उद्योग धंधों में किया जाता है। इनसे मिलने वाले रसायनों में मुख्य हैं - अल्कोहल, अम्ल, अमीनो एसिड, एल्कलायड, कार्बोहाइड्रेट, फैरोमोन, हाइड्रोकार्बन, फिनौल, स्टरायड, टैनिन, टरपीन्स, गोंद, सरेस आदि। राइजोफोरा म्यूक्रोनाटा एवं सेरीओप्स कंडोलेना की छाल से टैनिन निकाला जाता है। मैंग्रोव को जड़ों में कवक रहती हैं जिनके द्वारा कैंसर रोधी औषधि 'टेक्सोल' उत्पन्न किया जाता है। केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा मधुमेह के नियंत्रण के लिए दरा सीडीआर-134-डी-123 बनाई गई जो मैंग्रोव वृक्ष के रस से निकाली गई है।

2. मैंग्रोव क्षेत्र से झींगा, मछली, केकड़े, झींगा मछली, सीप, घोंघे, लोबेस्टर आदि अनेक प्रकार के समुद्री जीव निकाले जाते हैं जो तटीय निवासियों की आमदनी का मुख्य स्रोत है।

3. मैंग्रोव वन लकड़ी उद्योग में लाभकारी हैं जो मकान बनाने तथा ईंधन के काम आती है।

4. मैंग्रोव वनों से शहद एकत्र किया जाता है। प्रत्येक वर्ष सुंदरबन से ही लगभग 112 टन शहद वहां के निवासी एकत्र करके बेचते हैं। वह मधुमक्खियों को कोई भी हानि पहुंचाए बिना ही शहद एकत्र करते हैं। यहां एपिस डोरसेटा (रौक मधुमक्खी) तथा एपिस मैलीफेरा (यूरोपियन मधुमक्ख़ी) पायी जाती हैं।

5. मैंग्रोव वृक्षों से मच्छर निरोधी तथा एड्स एवं पीलिया के उपचार की औषधि मिलती है।

6. मैंग्रोव वन 'ग्रीन हाउस' के प्रभाव को कम करने के साथ ही कार्बन को बड़ी मात्रा में एकत्र करके भूमि में भंडारित करते हैं। यह अधिक कार्बनडाईआक्साइड वाले वातावरण में भी जीवित रह सकते हैं। यह बैक्टीरियल बायोफर्टीलाइजर का कार्य करता है।

7. नाइपा की पत्तियां चटाई, टोकरी और झोपड़ी की छत बनाने के काम आती हैं।

मैंग्रोव को नष्ट करने वाले कारक :

इन्टरनेशनल यूनियन फौर कन्सरवेशन आफ नेचर के अनुसार संपूर्ण विश्व में प्रत्येक 6 में से एक मैंग्रोव की प्रजाति विलुप्त होने की कगार पर है। पिछले 60 वर्षों में दक्षिण पूर्वी एशिया में (भारत सहित) 80% मैंग्रोव नष्ट हो गए हैं जिसका मुख्य कारण प्राकृतिक आपदाओं के साथ मनुष्य के क्रिया कलाप हैं। भूमि सुधार एवं तटीय निर्माण कार्य, वृक्षों की कटान, जलीय जीवों की खेती, कारखानों एवं घरों से होने वाले प्रदूषण, सभी प्रकार का कूड़ा कचरा, रासायनिक एवं व्यर्थ पदार्थों को तट पर फेंकना, कीटनाशी, नदी तटों से बालू का अत्यधिक खनन, समुद्री संसाधनों का अत्यधिक दोहन, चारकोल एवं लकड़ी के कारखाने, जहाजों से निकलने वाला कचरा एवं दुर्घटनावश फैलनेवाला तेल, पर्यटन उद्योग, बढ़ती जनसंख्या का दबाव आदि मैंग्रोव परिस्थितिकी तंत्र को नष्ट करने में अहम भूमिका निभाते हैं (चित्र 8)। भारत सहित दक्षिण पूर्वी एशिया में पाया जाने वाले सोनरेशिया ग्रिफिथी विलुप्त होने की कगार पर हैं। ब्रूगुएरा हेनिसी इन्डोनेसिया, मलेसिया, थाइलैंड, सिंगापुर, पापुआ न्यूगुनिया में लुप्त होने वाला है।

अमेरिकी संस्थाओं नासा तथा यू.एस. जियोलॉजिकल सर्वे द्वारा लिए गए सेटिलाइट चित्रों के अध्ययन से पता चलता है कि विश्व में मैंग्रोव जंगलों का आच्छादन पहले से कम हो गया है (ग्लोबल इकोलौजी एवं बायोजियोग्राफी 2010)। विश्व में इस समय 53,190 वर्गमील (137,760 वर्गकिमी.) मैंग्रोव है यह पहले से 12.3% कम हो गया है और दयनीय स्थिति में है। यह अध्ययन पहली बार किया गया है जिससे मैंग्रोव का वास्तविक क्षेत्र तथा वितरण या फैलाव का ज्ञान हो। ऐसा विश्वास है कि 35% मैंग्रोव जंगल 1980-2000 के बीच नष्ट हुए हैं जिसका प्रभाव तटीय शहरों एवं लोगों पर पड़ा है। मनुष्य के बढ़ते हस्तक्षेप और बार-बार आने वाले तूफानों से मैंग्रोव ज्यादा नष्ट हुआ है जबकि इसका प्रभाव मूंगे की चट्टानों और उष्ण कटिबंधीय वनों पर कम पड़ा है।

झींगा मछली उत्पादन : सबसे नया और प्रभारी कारक

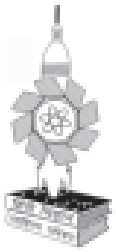

झींगा मछली और झींगा का तटीय क्षेत्रों में उत्पादन है। ताईवान में 1970 में झींगा मछली की गहन खेती आरंभ होने के पश्चात यह तीव्र गति से दक्षिण पूर्वी एशिया में फैल गई और कैरेबियन तथा लेटिन अमेरिका तक पहुंच गई। इन्डोवेस्टर्न पेसिफिक क्षेत्र में ही 1.2 मिलियन हेक्टेयर मैंग्रोव को 1991 तक एक्वाकल्चर तालाब में परिवर्तित कर दिया गया है। समुद्र तट पर इनके उत्पादन से ही थाईलैंड में 65,000 हेक्टेयर मैंग्रोव वन नष्ट हो गए हैं। जावा में 70%, सुलावेरी 49% एवं सुमात्रा 36 % मैंग्रोव नष्ट हो गए हैं। विश्व में 2-8% प्रतिवर्ष की दर से मैंग्रोव नष्ट हो रहे हैं।

भारत में झींगा मछली प्रजनन एवं विकास से पिछले दशक में मैंग्रोव वन मछली के तालाबों में परिवर्तित कर दिए गए हैं। ऐसे 5% फार्म मैंग्रोव क्षेत्र में बने हैं। गोदावरी डेल्टा

तालिका - 2
मैंग्रोव के प्रमुख कुल एवं जातियां

क्रम संख्या	कुल	जाति/प्रजातियों की संख्या
1	एविसेन्निएसी	एविसेन्निया–10
2	बिगोनिएसी	डोलीचेन्ड्रोन–1
3	कमब्रेटेसी	कोनोकार्पस–1,लगुनकुलेरिया–1, लुमनिटेजेरा –3
4	सीजलपीनीएसी	साइमोमेट्रा –2
5	राइजोफोरेसी	ब्रुगुएरा–6,सेरीओप्स–2, कनडेलिआ–1, राइजोफोरा–8
6	सोनरेटिएसी	सोनरेशिया–7
7	बाम्बेकेसी	केम्पटोस्टीमोन–2
8	यूफोरबिएसी	एक्सोइकेरिया–3
9	मेलिएसी	जाइलोकारपस–3, एग्लाइआ–1
10	मिरसाइनेसी	एजिसिरास–2
11	मिरटेसी	आस्बोनिया–1
12	पैलीसिरेसी	पैलीसिएरा–1
13	प्लमबेजीनेसी	एगिआलिटिस–2
14	रूबिएसी	स्काईफिफोरा–1
15	स्टरकुलिएसी	हेरीटिएरा–3
16	लाइथ्रेसी	पेम्फिस–2

• केथरीसन एवं बिन्घम 2001

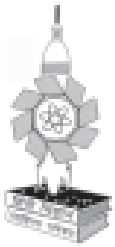

में रिमोट सेंसिंग इमेज से लिए गए आंकड़ों से ज्ञात होता है कि 14% जलीय जीव फार्म मैंग्रोव भूमि पर बने हैं। मैंग्रोव वन को फार्म में परिवर्तित करने की दर 1997-99 के मध्य बढ़ गयी है। इससे प्रतीत होता है कि पहले फार्म कृषि भूमि एवं खाली पड़ी भूमि पर बनाए गए फिर उपयुक्त भूमि न मिलने पर मैंग्रोव को नष्ट करके बनाए गए हैं (तालिका 3)।

मैंग्रोव पर सुनामी का प्रभाव : भारत में 2004 में आए सुनामी से हुए नुकसान का आंकलन रिपोर्ट सेंसिंग एवं जीआईएस तकनीक द्वारा किया गया। इनके लिए मन्नार की खाड़ी, तमिलनाडु के पास तीन द्वीपों (मन्डअपम समूह) के ऊपर आंकड़े एकत्र किए गए जिनसे ज्ञात हुआ कि यहां सुनामी से कोई विशेष हानि नहीं हुई है। मैंग्रोव ने द्वीप को नष्ट होने से बचाया है। जिन मैंग्रोव एवं अन्य प्रजातियों के वृक्षों को कुछ नुकसान हुआ था वह पुर्नजीवित हो गयी है तथा सफलता से उग रही हैं। जबकि अन्य जलीय पौधों तथा पर्यावरण पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है जिसको सुधरने में सदियां लग सकती हैं। मंडअपम द्वीप में कम हानि होने का मुख्य कारण है यहां आबादी नहीं है। मनुष्य का हस्तक्षेप कम होने से यहां मैंग्रोव अच्छी स्थिति में है दक्षिणी अंडमान द्वीप समूह अत्यंत प्रभावित हुआ है। यहां कृषि योग्य भूमि जलप्लावित हो गई है और कई स्थानों पर लगभग 1 मीटर पानी भर गया है जिससे यहां भूमि का क्षेत्रफल कम हो गया है। अग्रिम पंक्ति के मैंग्रोव जो संकरी खाड़ी के किनारे थे, नष्ट हो गए हैं, जबकि भूमि पर लगे जंगल सही स्थिति में हैं। दक्षिणी अंडमान द्वीप समूह का दक्षिणी भाग सुनामी से सबसे अधिक प्रभावित हुआ है और यहां मैंग्रोव अधिक नष्ट हुए हैं। इसका मुख्य कारण भूमि का पानी से भर जाना है जिससे न्यूमेटोफोर पानी में डूब गयीं और पेड़ों में हवा का आवागमन रुद्ध हो गया।

उड़ीसा के तटीय किनारों पर 1999 में आए विनाशकारी तूफान (सुपर साइक्लोन) से अत्यधिक जान माल की हानि हुई थी। अनेक मैंग्रोव जिसमें वृक्ष, झाड़ी, फर्न, पाम आदि थे बुरी तरह से नष्ट हो गए थे। मिटरकनिका में घने मैंग्रोव

तालिका - 3
झींगा मछली उत्पादन फार्म का गोदावरी डेल्टा पर प्रभाव

भूमि का उपयोग	भूमि उपयोग का क्षेत्रफल (हेक्टर)			झींगा मछली फार्म मे परिवर्तन (हेक्टर)		
	1989	1997	1999	1987–1997	1997–1999	1989–1999
कृषि भूमि	–	–	–	4543	2324	6903
खाली भूमि	–	–	–	3149	1327	4497
घना मेनग्रूव	16586	15987	15318	433	471	1137
छिछला मेनग्रूव	4530	3786	3199	604	666	1030
कुल मेनग्रूव	21116	19773	18517	1037	137	2167
अन्य	–	–	–	2281	1493	3714
जलीय जीव फार्म	2006	13032	19239	–	–	–
योग	–	–	–	17281	6251	17281

• रिमोट सेंसिंग एप्लीकेशन सेंटर 1999

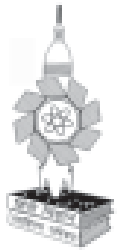

जंगल हैं यहां आस पास के गांवों में उतनी हानि नहीं हुई थी जबकि अन्य स्थानों पर सैकड़ों गांव बह गए थे। यहां सरकार ने 3000 हेक्टेयर में मैंग्रोव को पुनः स्थापित करने की योजना बनई है।

मैंग्रोव का संरक्षण : मैंग्रोव वनों का संरक्षण करने के लिए और पुनः रोपण करने के लिए आवश्यक है कि वहां मिलने वाली प्रजातियों का ही चयन किया जाए और पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को ध्यान में रखकर उनके अस्तित्व को बनाये रखने के प्रयास हों।

नदी प्रभावित क्षेत्र में पोषक तत्वों का आगमन बहुत अधिक होता है यह पास के तटीय क्षेत्रों के मछली उत्पादन को प्रभावित करता है। ताजे पानी के अंदर कम आने से तटीय वातावरण में पोषक तत्व कम आएंगे और मछली उत्पादन प्रभावित होगा। अतः स्वच्छ पानी को अंदर आने से रोकने वाले अवरोधों का हटाना चाहिए।

मैंग्रोव पारिस्थितिकी तंत्र की विशेषताओं को जानते हुए और तटीय क्षेत्रों को सुदृढ़ रखने में इसकी आवश्यकता हो पहचानते हुए अनेक संस्थाएं अब मैंग्रोव संरक्षण एवं प्रबंधन का कार्य कर रही हैं।

1. भारत सरकार ने मैंग्रोव की उन्नति एवं संरक्षण के लिए ''राष्ट्रीय मैंग्रोव समिती'' का गठन पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अंतर्गत 1976 में किया। इस समिती द्वारा 1979 में 15 क्षेत्र संरक्षण के लिए चयनित किए गए। समिती का मुख्य कार्य देशभर में रिमोट सेंसिंग तकनीक या भूमि सर्वेक्षण द्वारा मैंग्रोव क्षेत्रों का आंकलन व नक्शा बनाना, संरक्षण कार्यक्रम, मैंग्रोव का पुनः रोपण, प्रबंधन के उपायों का अध्ययन, मैंग्रोव पारिस्थितिकी, वनस्पति, जीव, जंतुओं एवं सूक्ष्म जीवों का अध्ययन तथा कार्बनिक पदार्थों एवं तलछट का रासायनिक विश्लेषण करना है।

2. एम.एस.स्वामीनाथन रिसर्च फाउन्डेशन, चेन्नई ने पंद्रह वर्ष पहले भारत के लुप्त होते मैंग्रोव वनों को संरक्षित करने के लिए ''मैंग्रोव प्रबंधन प्रोजेक्ट'' ''इन्डोकेनेडियन एन्वायरमेंट फेसिलिटी'' के साथ बनाया जिसे ''कैनेडियन इंटरनेशनल डेवलपमेंट एजेंसी'' आर्थिक सहायता दे रही थी। यह प्रोजेक्ट 1996-2003 में दक्षिणी भारत के पूर्वी तटों पर 6 स्थानों पर मैंग्रोव को बचाने के लिए चलाया गया। इसकी सहायता से 1447 हेक्टेयर, नष्ट होते हुए, मैंग्रोव वनों को पुनः स्थापित करने में सहायता मिली।

3. उड़ीसा के महानदी डेल्टा में मैंग्रोव को पुर्नस्थापित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। यहां मैंग्रोव को अप्राकृतिक रूप से बोने पर किए शोध कार्यों से ज्ञात हुआ कि एक ही प्रजाति को बोने के साथ पर कई प्रजातियां मिलाकर बोने से जमाव बढ़वार अच्छी हुई तथा उनके जीवित रहने की दर भी संतोषजनक थी। नेशनल मैंग्रोव जेनेटिक रिर्सोसेस सेंटर की स्थापना उड़ीसा में की गई है।

4. मुंबई की सबसे विशाल मैंग्रोव पट्टी ठाणे के पश्चिमी किनारे पर स्थित संकरी खाड़ी में है। इस भूभाग के निकट ही गोदरेज एवं बायस की शहर निर्माण योजना, पिरोजशानगर, विक्रोली में चल रही है। यहां मैंग्रोव की 16 प्रजातियां, अन्य पेड़ पौधों एवं जीव जंतुओं के साथ पायी जाती हैं। यहां मैंग्रोव को संरक्षित रखने के लिए ''सूना बाई पिरोजशा गोदरेज मेरीन एकोलोजी केंद्र'' नामक संस्था बनाई गई है जिसका कार्य मैंग्रोव की स्थिति तथा स्वास्थ्य का निरीक्षण, दुर्लभ प्रजातियों का संरक्षण, नई पौध तैयार करना एवं नए पौधे लगाना है। मैंग्रोव का महत्व लोगों को समझाने के लिए फिल्म संगोष्ठी, शिविर, पोस्टर, फील्ड डे आदि का आयोजन करना है। इस सराहनीय कार्य के लिए वर्ष 2005 का ''बी.एन.एच.एस. ग्रीन गारनेन्स अवार्ड'' ''कन्सरवेशन एंड रिस्टोरेशन ऑफ हेबिटेट'' के लिए इस कंपनी को दिया गया।

5. इंटरनेशनल सोसायटी फॉर मैंग्रोव इकोसिस्टम ने गुजरात में साबरमती के पास 80 हेक्टेयर में वृक्षारोपण शुरु किया है। इस कार्यक्रम के लिए जापान से आर्थिक सहायता मिल रही है।

इस प्रकार के कार्य विदेशों में भी किये जा रहे हैं। जिसमें सिंगापुर मस्कट, इनोवेशिया, थाईलैंड, मलेशिया प्रमुख है। इसके अलावा नासा की जेट प्रोपलशन प्रयोगशाला (यू.एस.) के लोला फेटोमिन्सो ने एक नई सेटिलाइट विधि पर प्रयोग किये जिसके द्वारा मैंग्रोव वनों का क्षेत्रफल, ऊंचाई और बायोमास को नापा जा सके। उनके इस प्रयोग द्वारा मैंग्रोव के तीन प्रकार के नक्शे बनते हैं-

1. महाद्वीप का नक्शा- कितनी भूमि मैंग्रोव से आच्छादित है।

2. महाद्वीप में फैले वन का त्रिआयामी चित्र, जिसमें वृक्षों की ऊंचाई ज्ञात हो।

3. बायोमास चित्र- जिससे ज्ञात होगा कि मैंग्रोव कितना 'कार्बन' एकत्र करता है।

मैंग्रोव प्रबंधन वर्गः इस ग्रुप का उद्देश्य मैंग्रोव इकोसिस्टम को वैज्ञानिक तरीके से समझना और इसके संरक्षण व प्रबंधन के उपाय खोजना है. इनका कार्यक्षेत्र भारत, कीनिया, श्रीलंका एवं मारीशस है। ये तंजानिया, वियतनाम व कीनिया में होनेवाली शोध से भी जुड़े हुए हैं।

विभिन्न दृष्टि दोष और उनका निराकरण

- डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार -
गायत्री नगर, पो. दमोह (म.प्र.) पिन- 470661

जब आंख की सामान्य स्थिति में, दूर (अनंत) से आने वाली प्रकाश की किरणें दृष्टिपटल (Retina) पर केंद्रित नहीं होती है तो इस स्थिति में दृष्टि दोष उत्पन्न हो जाता है। और व्यक्ति को वस्तु स्पष्ट नहीं दिखलाई देती है।

प्रमुख रूप से दृष्टि दोष तीन तरह के हो सकते हैं -

1. मायोपिया अथवा निकट दृष्टि दोष
2. हाइपरमेट्रोपिया अथवा दूर दृष्टि दोष
3. एस्टिग्मेटिज्म

निकट दृष्टिदोष (Myopia)

इस तरह के दोष में दूर से अथवा अनंत से आने वाली किरणें रेटिना या दृष्टि पटल पर केंद्रित न होकर पहले, उसके सामने केंद्रित होती है।

यह कार्य विधि के अनुसार तीन तरह का हो सकता है।

1. एक्सीयल मायोपिया (Axial Myopia)

यह दोष तब होता है जब नेत्र गोलक के अग्र भाग से लेकर पृष्ठ भाग तक की लंबाई सामान्य से अधिक होती है।

2. करवेचर मायोपिया (Curvature Myopia)

जब कार्निया या लैंस का उठाव सामान्य से अधिक होता है।

3. इन्डेक्स मायोपिया (Index Myopia)

जब लैंस का अपवर्तनांक सामान्य से अधिक होता है। इसका एक उदाहरण है लैंस में स्कलेरोसिस (Lental Sclerosis) को होना।

चिकित्सीय दृष्टि से भी मायोपिया, तीन तरह का हो सकता है -

1) जन्म से ही निकट दृष्टि दोष :-

इस तरह का मायोपिया जन्म से ही होता है। यह एक आंख में भी हो सकता है और दोनों में एक साथ भी हो सकता है।

2) साधारण या विकासशील निकट दृष्टि दोष :-

यह सामान्यतया सबसे अधिक मात्रा में होने वाला दोष है। यह स्कूल और कालेज की उम्र में बढ़ता है इस कारण चश्में के लैंस की शक्ति भी बढ़ती जाती है। लेकिन बाद में यह स्थिर हो जाता है।

3) आंख में विकृति के कारण होनेवाला मायोपिया :-

इस प्रकार का मायोपिया बहुत जल्दी बढ़ता है और वयस्क होते-होते 20 डी.(डायोप्टर) या इससे अधिक हो जाता है।

मायोपिया या निकट दृष्टि दोष के लक्षण :-

इसमें दूर की वस्तुएं स्पष्ट देखने की क्षमता कम हो जाती है, परंतु पास की वस्तुएं ठीक दिखाई देती है। आम तौर पर इसके कारण सिरदर्द नहीं होता है।

निकट दृष्टि दोष (मायोपिया) की पहचान :-

इसकी पहचान, रिफेरेक्शन अथवा आंख का परीक्षण करके तथा रेटिना की जांच करके की जाती है आजकल नेत्र विशेषज्ञ कम्प्यूटर जांच द्वारा भी इसका पता करते है। लेकिन रिफरेक्शन द्वारा विभिन्न तरह के लेंसों से उचित शक्ति वाले लेंसों का चुनाव बहुत से नेत्र विशेषज्ञ आज भी करते है।

चिकित्सा :-

निकट दृष्टि दोष को दोनों ओर से अवतल कांच के लैंस द्वारा ठीक किया जाता है। आंख में विकृति के कारण होने वाले मायोपिया को शल्य चिकित्सा से ठीक करते है। लेकिन यदि रेटिना के अलग होने से मायोपिया हुआ है तो लेसर पद्धति से इसे ठीक करते है। आजकल बढ़े हुए दृष्टिदोष को शल्य चिकित्सा (लेजर विधि) द्वारा अच्छा किया जा सकता

है। इसके लिए चश्मा लगाने की जरुरत नहीं होती।

दूर दृष्टिदोष (Hypermetropia)

इस तरह के दृष्टि दोष में अनंत से आने वाली प्रकाश की किरणें रेटिना के पीछे फोकस होती है। इसे दूर दृष्टि दोष कहते है।

दूर दृष्टि दोष भी तीन प्रकार के होते हैं :-

1. ध्रुवीय प्रकार (Axial Type)

जब नेत्र गोलक के अग्र पृष्ठ की लंबाई सामान्य से कम होती है तो यह दोष उत्पन्न होता है।

2. वक्रीय प्रकार (Curvature Type)

जब कार्निया या लैंस, सामान्य से कम वक्रीय (Curvature) होता है तो हाइपर मेट्रोपिया हो जाता है।

3. इंडेक्स प्रकार (Index Type)

जब माध्यम का परावर्तन इंडेक्स सामान्य से कम होता है तो यह दोष उत्पन्न हो जाता है।

चिकित्सकीय दृष्टि से भी दूर दृष्टि दोष तीन प्रकार के होते हैं :-

1. जन्म से :-

यह कम ही शिशुओं में होता है। मां के गर्भ में ही आखों के विकास में गड़बड़ी आ जाने के कारण हाइपरमेट्रोपिया हो जाता है।

2. साधारण अथवा विकासशील :-

यह सबसे सामान्य प्रकार का दूरदृष्टि दोष है। नवजात शिशु के नेत्र हाइपरमेट्रोपिक होते है। लेकिन जैसे-जैसे शिशु के नेत्रों के विकास होता जाता है, हाइपरमट्रोपिया कम हो जाता है, लेकिन यदि आंखों की दीवारों की वृद्धि रुक जाती है, तो हाइपरमट्रोपिया बना रहता है।

बाद में प्राप्त हाइपरमेट्रोपिया (Acquired Hypermetropia) :

जब ऑपरेशन में लैंस निकाल दिया जाता है तो आंखें हाइपरमेट्रोपिक हो जाती हैं। ऐसे मामले में दोष की मात्रा अधिक होने के कारण अत्याधिक शक्ति का लैंस लगता है।

हाइपरमेट्रोपिया से आंख की समायोजन क्षमता प्रभावित होती है। इस दोष से आंखें कुछ मात्रा में तो समायोजित कर लेती है। लेकिन इससे समायोजन करने वाली पेशियों कमजोर हो जाती है आंखों पर जोर पड़ने के कारण सिरदर्द भी होता है पास के अक्षर धुंधले दिखते है।

पहचान (Diagnosis) :-

नेत्र चिकित्सक आंख के पर्दे की जांच कर एवं रिफरेक्शन द्वारा इस दोष का पता करते है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है रिफेक्टिव-कम्प्यूटर द्वारा भी इस दोष का सरलता से पता किया जा सकता है।

चिकित्सा :-

नेत्र विशेषज्ञ द्वारा आंखों की जांच कराकर, उचित शक्ति के उत्तल लेंसों द्वारा दूरदृष्टि दोष को ठीक किया जा सकता है। आजकल लेजर पद्धति द्वारा एक महंगी मशीन से भी दृष्टि दोषों को दूर करते है यह आंखों की शल्य क्रिया द्वारा किया जाता है। इसके पश्चात चश्मा लगाने की आवश्यकता नहीं होती।

3. एस्टिग्मेटिज्म (Astigmatism) :-

यह एक विशेष तरह का दृष्टि दोष है। जिसमें अनंत से

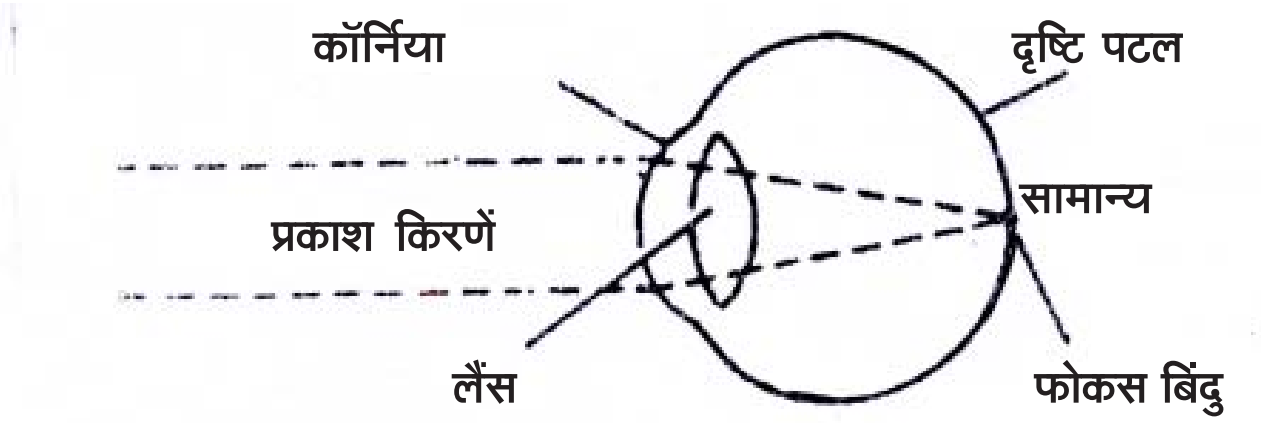

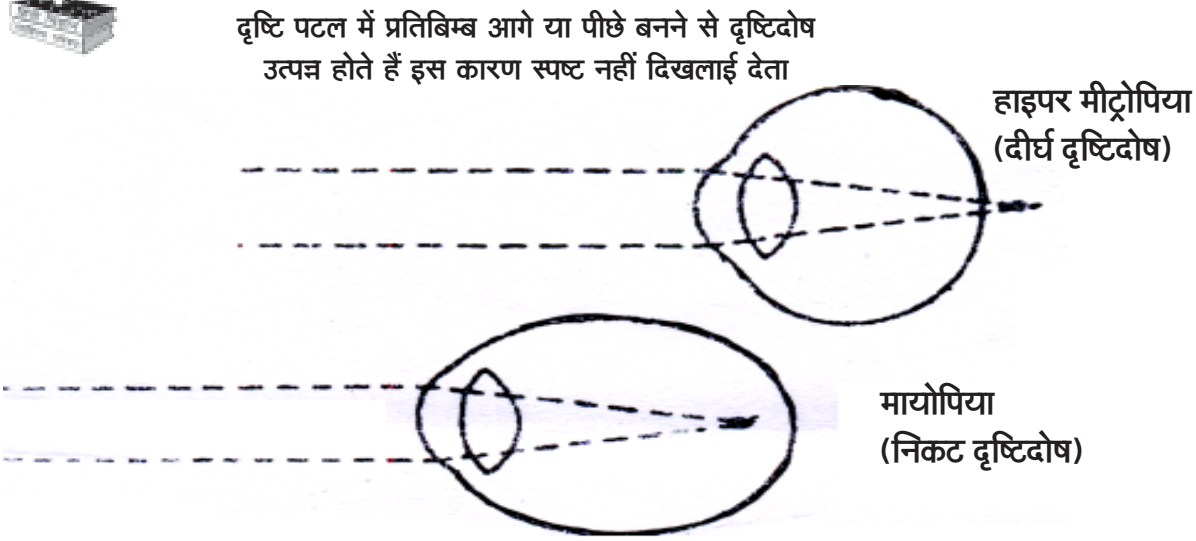

आने वाली प्रकाश की किरणें एक बिंदु पर केंद्रित नहीं हो पाती है। ऐसा आंखों के विभिन्न दृश्य हिस्सों के अलग-अलग रिफरेक्शन के कारण होता है।

कारण (Causes) :-

1. कार्निया या लैंस की असमान वक्रता के कारण।

2. लैंस का अपनी यथा स्थिति से हटने या तिरछा हो जाने के कारण भी यह दोष उत्पन्न हो जाता है।

एस्टिग्मेटिज्म के प्रकार (Type of Astigmatism) :-

1. एक समान एस्टिग्मेटिज्म

(Regular Astigmatism) :-

जब रिफरेक्टिव शक्ति एक माध्य से दूसरे माध्यम में एक समान बदलती है। तो इस तरह का दृष्टि दोष होता है।

2. असमान एस्टिग्मेटिज्म

(Irregular Astigmatism) :-

जब असमान रुप से अलग-अलग माध्यमों की रिफरेक्टिव शक्ति बदलती है। तब असमान एस्टिग्मेटिज्म दोष उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण

(Symptoms)

1. देखने की क्षमता कम हो जाती है।

2. नेत्रों की समायोजन शक्ति पर जोर पड़ने के कारण सिरदर्द उत्पन्न हो जाता है। सिर और आंखों में भारीपन लगता है।

पहचान

चिकित्सक नेत्र के परदों की जांच एवं समतल दर्पण द्वारा इस दोष का पता करते है। कम्प्यूटर जांच में रोग की पहचान हो जाती है।

चिकित्सा

उचित बेलनाकार कांच (cylindrical) के द्वारा एक समान एस्टिग्मेटिज्म को दूर करते है जबकि असमान एस्टिग्मेटिज्म को कॉटेक्ट लैंस (cylindrical) लगाकर दूर किया जाता है।

प्रिसबायोपिया

(Presbyopia) :

उक्त तीन तरह के दृष्टि दोषों के अलावा एक दोष और प्रिसबायोपिया होता है। यह चालीस वर्ष की उम्र पार करने के पश्चात समायोजन क्षमता में आयी गड़बड़ी के कारण होता है।

इस रोग में लेंस का लचीलापन कम हो जाने के कारण वह वांछित उत्तलता प्राप्त नहीं कर पाता और व्यक्ति को स्पष्ट नहीं दिखता।

पढ़ने के लिए उम्रानुसार उचित शक्ति के उत्तल लैंस लगाकर इस तरह की खराबी को दूर करते हैं। लैस का चुनाव निम्नानुसार करते हैं:-

उम्र	**लैंस की शक्ति**
40 वर्ष	+1 D
45 वर्ष	+1.5 D
50 वर्ष	+2 D
55 वर्ष	+2.5 D

इस तरह से उक्त दृष्टि दोषों की पहचान और उपचार किया जाता है। कुछ चश्में नेत्र रोग विशेषज्ञ हमेशा उपयोग के लिए लिखते है। इन्हें हमेशा उपयोग करने में कई बार परेशानी होती है, विशेषकर लड़कियां नजर के चश्में का उपयोग नहीं करना चाहती. इस समस्या का समाधान कांटेक्ट लैंस द्वारा किया जाता है। ये आंखों के स्वच्छ पटल पर

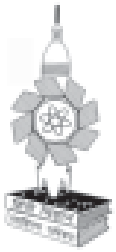

चिपक जाते हैं और यदि कोई कान्टेक्ट लैंस भी न लगाना चाहे और अधिक पैसा खर्च कर सकता हो तो वह लेसर द्वारा शल्य चिकित्सा भी करवा सकता है। लेकिन शल्य क्रिया अत्यंत निपुण और अनुभवी नेत्र रोग विशेषज्ञ द्वारा ही करवानी चाहिए तभी परिणाम संतोषजनक मिलते है।

विभिन्न दृष्टि दोषों का उपचार, बगैर चश्में के

वैज्ञानिकों ने चश्में के विकल्प के रुप में शल्य चिकित्सा अथवा कान्टेक्ट लैंस सहित कई विधियां खोज ली है (कान्टेक्ट लेंस, लेजर लेसिक ऑपरेशन एवं अन्य साधन)। वैसे तो लैंस वाले चश्मों की उपयोगिता आज भी है और शायद भविष्य में भी रहेगी। लेकिन विकल्प में कान्टेक्ट लैंस तो है ही, अब लेसर किरणों द्वारा भी दृष्टि दोष युक्त आंखों की इस तरह शल्य क्रिया की जाती है कि आजीवन चश्मा लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। लेकिन इस तरह की सुविधा बड़े शहरों में ही उपलब्ध होती है। यहां हम चश्मे के कुछ विकल्पों की चर्चा संक्षेप में करेंगे। साथ ही इनके फायदे और नुकसान को भी बतलाएंगे।

कान्टेक्ट लैंस (Contact Lens)

कान्टेक्ट लैंस का प्रचलन तो लगभग 100 वर्ष पुराना हो चुका है लेकिन अब ऐसे मुलायम और लचीले लैंस आ गए है जिन्हें कई दिनों तक लगाया जा सकता है। इसी तरह प्रतिदिन उपयोग कर रात्रि में उतारकर फेंक देने वाले डिस्पोजेबिल लैंस भी अब उपलब्ध है। इन्हें सुबह-सुबह लगा सकते हैं, और सोने के पूर्व निकालकर कचरे की टोकरी में डाल सकते हैं। इस तरह ये रख रखाव की झंझट से भी मुक्त होते है। कान्टेक्ट लैंस कम पावर से लेकर अधिक पावर अथवा शक्ति के आते है। अब ये अच्छे किस्म के प्लास्टिक के बनने लगे हैं और ये मुलायम होते हैं। ये शल्य चिकित्सा का भी सस्ता विकल्प है। पहले कान्टेक्ट लैंस कड़े बड़े आकार के आते थे जिन्हें कुछ घंटों ही लगाया जा सकता था लेकिन अब मुलायम (Soft) छोटे-छोटे लचीले लैंस आते हैं जिन्हें आसानी से आंख के स्वच्छ पटल पर लगाया जा सकता है।

कान्टेक्ट लैंस के निम्नलिखित लाभ है :- 1. खिलाड़ियों के लिए कान्टेक्ट लैंस विकल्प के रुप में ठीक रहते हैं।

2. जब दोनों आंखों की दृष्टि में बहुत फर्क आ जाता है तो चश्मा लगाना संभव नहीं होता, क्योंकि इस में एक के दो प्रतिबिंब बनते हैं, तब इस स्थिति में कान्टेक्ट लैंस ही विकल्प होते है।

3. एस्टिग्मेटिज्म नामक दृष्टि दोष को दूर करने में कान्टेक्ट लैंस अधिक उपयोगी होते हैं।

4. चश्मों से अधिक स्पष्ट, कान्टेक्ट लैंसों के माध्यम से दिखलाई देता है।

5. कान्टेक्ट लैंस से इधर-उधर भी देखा जा सकता है, जबकि चश्में से देखने के लिए सिर घुमाना पड़ता है।

6. सौंदर्य की दृष्टि से पुतली का रंग बदलने के लिये भी इन्हें लगाया जा सकता है।

कान्टेक्ट लैंस कैसे लगाएं- पहली बार नेत्र विशेषज्ञ से सीखकर और अभ्यास कर इसे सरलता से लगाया जा सकता है। नेत्र विशेषज्ञ कान्टेक्ट लैंस लगाने की सलाह देने के लिए इन बातों का ध्यान रखते हैं -

1. निकट और दूर की नजर की जांच की जाती है।

2. कार्निया का आकार भी देखा जाता है फिर कान्टेक्ट लैंस का नंबर विशेषज्ञ देते हैं।

3. यदि आंखों में कोई संक्रमण या कार्निया की बीमारी (छाले इत्यादि) हो तो फिर कान्टेक्ट लैंस की सलाह नहीं देते। सूखी आंखें या जीरोसिस रोग में भी इसकी सलाह नहीं दी जाती है।

कान्टेक्ट लैंस की कुछ कमियां- 1. इनका रखरखाव करना पड़ता है प्रायः रोज रात्रि में उतारना फिर लोशन से साफ करके लगाना पड़ता है। कभी-कभी लेंस छोटे होने के कारण खो जाते है, फिर इन्हें ढूंढना कठिन होता है।

2. लेंस यदि ठीक से साफ न हो तो इन पर कुछ पदार्थ जम जाते हैं जो कार्निया या स्वच्छ पटल पर घाव कर सकते है।

3. यदि व्यक्ति पढ़ने के लिए चश्मा लगाता है, तो उसे कान्टेक्ट लेंस लगाने के बावजूद पढ़ने के लिए चश्मा लगाना होता हैं।

डिस्पोजेबिल कान्टेक्ट लैंस :- इन्हें बार-बार साफ करने की जरुरत नहीं होती एक बार लगा कर फेंक दिए जाते हैं। लेकिन इस तरह के लेंसों का उपयोग अपेक्षा कृत महंगा होता है।

कान्टेक्ट लेंस के उपयोगकर्ता को कुछ समय के अंतराल से अपने नेत्र विशेषज्ञ से आंखों की एवं लेंस के नंबर की जांच करवाते रहना चाहिये। यदि कान्टेक्ट लेंस लगाने से आंखों में खुजली या लालिमा आए तो तुरंत चिकित्सक को दिखलाएं।

लेजर लेसिक शल्य चिकित्सा - इस शल्य चिकित्सा की भी अपनी सीमा है। इसके पहले से मौजूद प्रेस्बायोपिया दूर नहीं किया जा सकता, अतः व्यक्ति को पढ़ने के लिए चश्मा लगाना ही पड़ता है।

इस तरह की लेजर बीम द्वारा शल्य क्रिया में कार्निया या स्वच्छ पटल की सतह को आवश्यकतानुसार हटाकर कम किया जाता है। जिससे नजर सुधर जाए। यह -2 से -

32 डी के मायोपिया निकट दृष्टि दोष को ठीक करती है। लेकिन हाइपर मेट्रोपिया (दूर दृष्टिदोष) केवल कुछ ही ठीक हो पाता है।

लेजर विधि में दर्द नहीं होता। कार्निया पर खरोच उत्पन्न नहीं होती साथ ही मरीज को दर्द भी नहीं होता। लेकिन इस तरह के ऑपरेशन में प्रशिक्षित अथवा दक्ष नेत्र रोग विशेषज्ञ की जरुरत होती है। इस सर्जरी पर लगभग 35 हजार रुपयों का खर्च आता है।

एक और नई पद्धति :- जिस प्रकार मोतियाबिंद का ऑपरेशन करके कृत्रिम लेंस डालते हैं उसी तरह दृष्टि दोष से पीड़ित व्यक्ति की आंखों में उसके दोष के अनुसार कृत्रिम लेंस लगा देते हैं। इससे अधिक उम्र में होने वाला प्रिसवायोपीया भी ठीक हो जाता है। जो व्यक्ति लेजर लेसिक सर्जरी, कार्निया पतला होने की वजह से नहीं करवा सकते वे इस शल्य विधि द्वारा इलाज करवा सकते हैं। इस विधि में एक साथ निकट, मध्य एवं दूर दृष्टि ठीक करने वाले लेंस भी लगाए जा सकते हैं। आजकल यह नई विधि अधिक उपयोग में आ रही है। जिनकी दृष्टि बहुत कमजोर हो चुकी होती है उनके लिए भी यह विधि प्रभावी है। इनसे चश्में या कान्टेक्ट लैंस के झंझट से राहत मिलती है।

इस तरह की शल्य चिकित्सा के संभावित खतरे :- इन शल्य क्रियाओं के कुछ खतरे भी हैं जैसे ऑपरेशन के बाद आखों में संक्रमण हो सकता है। दृष्टि पटल के अलग हो जाने का भी खतरा होता है। आंखों में सूजन आ सकती है और मोतियाबिंद हो सकता है। कभी-कभी कार्निया को भी हानि पहुंच सकती है। अतः ऐसे ऑपरेशन दक्ष और प्रतिष्ठित नेत्र रोग विशेषज्ञ द्वारा करवाने चाहिए।

4. आर.के.केरोटेक्टॉमी :- इस विधि में मायोपिया या निकट दृष्टि दोष केवल 2 से 6 पावर तक की ही दूर किया जा सकता है।

5. आटोमेटिक लेमेलट केरोटो प्लास्टी या ए.एल.के :-

इस शल्य विधि से दृष्टि के बड़े दोष भी दूर किए जा सकते है। यह आपरेशन भी स्वच्छ पटल में चीरे लगाकर किया जाता है। इसमें विशेष यंत्रों का उपयोग करते है। इस विधि में भी उचित पावर आते-आते महिनों लग जाते है पर्दे पर कार्निया में धुंधला पन आ जाता है। वैसे आजकल इस तरह की विधि लोकप्रिय नहीं है। बल्कि लेजर वाले ऑपरेशन ज्यादा लोकप्रिय हो रहे है। डिस्पोजेबिल लेंसों का प्रचलन भी बढ़ रहा है। मोटे-मोटे लेंसों वाले चश्में के कई विकल्प मौजूद है जिनका प्रयोग कर चश्मों के झंझट से बचा जा सकता है। लेकिन विकल्प चुनने में योग्य एवं दक्ष नेत्र रोग विशेषज्ञ की सलाह लेना भी जरुरी है।

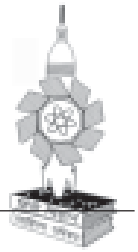

1. जैव विविधता-संरक्षण

बायोडाइवरसिटी का शाब्दिक अर्थ है कि बायो अर्थात् जीव, डाइवरसिटी अर्थात भिन्नता। पृथ्वी पर जीवों में भिन्नता को बायोडाइवरसिटी या जैव विविधता कहते हैं। वनस्पति, जीव-जंतु सूक्ष्मजीव जैसे बैक्टीरिया, वाइरस इन सबके जीवन में विविधता पायी जाती है। वनस्पतियाँ और जीव-जन्तु आपस में सामंजस्य स्थापित करते हैं। इसे पारिस्थितिकी तंत्र (इंको सिस्टम) कहते हैं। जब तक पारिस्थितिकी तंत्र सामान्य रुप में रहता है जीवन चलता है। जब पारिस्थितिकी तंत्र सामान्य नहीं होता है तो जीवन को चला पाना कठिन हो जाता है।

हम जीवन भर मकानों, आफिसों, कारखानों में रहते और काम करते हैं। मोटर-साइकिल, कार, हवाई जहाज का उपयोग करते हैं। इससे कृत्रिम पर्यावरण उत्पन्न होता है। ज़ो प्राकृतिक वातावरण में असंतुलन उत्पन्न कर सामान्य ज़ैव सृष्टि चक्रों को बाधित करता है। हम प्रकृति पर ही भोजन, वायु, जल, आदि आवश्यक तत्वों के लिए निर्भर रहते हैं।

उत्कृष्ट स्पीसीज और वनस्पतियां हमें खाना, लकड़ी, धागा, ऊर्जा, दवाईयां तथा उद्योगों के लिए रसायन देती हैं। प्राकृतिक क्रियाओं के संपादन में जैव विविधता का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रकृति में जल और वायु का शुद्ध होना, परागकरण की क्रिया का होना, पेड़ों द्वारा कार्बन को सोखना, प्राण वायु बनाना, बाढ़ और भूस्खलन पर नियंत्रण करना, मनुष्य और उद्योगों के अपशिष्टों को शुद्ध करना आदि क्रियाओं के संपादन में जैव विविधता महत्वपूर्ण योगदान देती है। वनस्पति व जीव मिलकर उपरोक्त शुद्धीकरण, तथा प्राकृतिक चक्रों की क्रियाओं को सम्पादित कराते है। अतः मानव का अस्तित्व, स्वास्थ्य पर्यावरण जैव विविधता पर निर्भर करता है।

जंगल के पेड़ पौधे, जीव-जन्तु सुंदरता, आश्चर्य और खुशी के साधन हैं। प्रत्येक आनुवंशिक जैनटिक सूचना और पृथ्वी पर हुए पर्यावरणीय परिवर्तन तथा उनके कारण हुए अन्य परिवर्तनों की सूचना देती है। मनुष्य के जीवित रहने के लिए जैव विविधता आवश्यक है।

जैव विविधता को संवारने/अध्ययन करने के अनेक पहलू है। जैसे इकोटूरिज्म विभिन्न प्रकार की चिड़ियों को देखना, जंगल में रहना, बागवानी, जानवरों को पालतू बनाना। प्रकृति के वरदान के फलस्वरुप भारत समृद्धता से भरा कृषि प्रधान राष्ट्र है जिसके प्रदेशों की विशिष्ट जलवायु है। इसे जीवोम या बायोम कहते हैं। प्रत्येक बायोम में विशिष्ट जलवायु के अनुरुप सामान्य जीवन प्रकृति में पाया जाता है। उष्णकटिबंधी, शीतोष्ण, मरुस्थलीय, कच्छीय इत्यादी जलवायु में जैव सम्पदाओं के असीमित भंडार हैं। भारतीय पर्वत श्रृंखलाओं की ऊंचाई में भिन्नता के कारण भारत जैव समृद्ध राष्ट्र है।

विश्व वनस्पति सम्पदा में ब्राजील के उपरान्त भारत है। भारत में वनस्पतियों की विविधता से भरी हजारों शाखायें हैं। जंगल में वनस्पतियाँ जैविक विविधता की स्रोत है। जैविक औषधियां अवांछनीय जीवाणुओं की वृद्धि को अवरुद्ध करती है। साथ ही शरीर की प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि भी करती है। इससे स्वास्थ्य लाभ मिलता है। इसी आधार पर आयुर्वेद पद्धति का विकास हुआ है। विश्व में आयुर्वेद पद्धति प्रमुख उपचार पद्धति है।

वायुमंडल में विभिन्न गैसों के साथ जल-वाष्प कण भी होते हैं। वनस्पतियां प्रकाश संश्लेषण द्वारा कार्बन डाईआक्साइड और जल के सानिध्य में प्राण वायु और कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करती है। जिससे जीवन चलता है। वनस्पतियां अपने पोषण का 10% भाग मृदा से प्राप्त करती है। अन्य आवश्यकताओं के लिए वायुमंडल पर निर्भर रहती है।

वनस्पतियों की उपस्थिति उपजाऊ मृदा के रखरखाव में सहायक है, और रेगिस्तान के विस्तार को नियंत्रित करती है। पेड़-पौधे अपनी जड़ों के विस्तार से मिट्टी में नमी और

जैव विविधता में ही समग्र जीवन है

भूमिगत जल भंडारों के भरण का कार्य भी करते हैं।

वनस्पतियां पारश्वसन द्वारा वायुमंडल में जल स्तर बनाए रखती है। जैव विविधता में जलवायु की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। समय के अंतराल पर जलवायु परिवर्तन दोलायमान रुप में सक्रिय रहा है। फलस्वरुप जीवों की विकास क्रिया प्रभावित होती है। जीवों को विशिष्ट जलवायु परिवेश की आवश्यकता होती है। जिसके प्रति वे संवेदनशील होते हैं। बदलती जलवायु बहुत से जीवों को जीवित रह पाने की संभावना को कम करती है। धीरे धीरे कुछ प्रजातियाँ लुप्त हो जाती हैं। वनस्पति लुप्त होने का प्रभाव उस पर आश्रित जीव-जंतुओं पर भी पड़ता है। इस कारण इनका संरक्षण आवश्यक है।

शहरीकरण, औद्योगीकरण और जनसंख्या वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तीव्र गति से हो रहा है। जंगल समाप्त हो रहे हैं। जैव विविधता का ह्रास हो रहा है। पर्यावरण भी प्रभावित हो रहा है। जैव विविधता एवं पर्यावरण में समेकित संबंध है। जैव विविधता का संरक्षण करना होगा। तभी मानव जीवित रह सकेगे। जंगल, पार्क, मरुभूमि, तालाब व अन्य जलीय वातावरण स्पेसीज तथा पारिस्थितिकी तंत्र जैव विविधता का निर्माण करते हैं। जैव विविधिता के व्यापारिक उपयोग से अत्याधिक दोहन और विनाश होगा। जैव विविधता की सुरक्षा और पारिस्थितिकी तंत्र की पवित्रता का अर्थ है जंगलों को सुरक्षा प्रदान करना।

हमें वनों, उपवनों, पार्कों की आवश्यकता है जहां पर प्रकृति की छटा हो और जिससे हमारा मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहे, और दबावों से मुक्ति मिल सके।

जैव विविधता की सुरक्षा अर्थात जंगलों की सुरक्षा, जंगलों के जीवन की सुरक्षा एवं लुप्त होने वाली प्रजातियों की सुरक्षा इससे परिस्थितिक तंत्र और विभिन्न क्षेत्रों की जैव विविधता सुरक्षित रहेगी।

कभी बाढ़, कभी सूखा होने से पारिस्थितिक तंत्र में परिवर्तन हो रहे हैं। पर्यावरण भी प्रदूषित हो रहा है। वनस्पति व जीवों की प्रजातियां लुप्त हो रही हैं।

पृथ्वी पर स्पेसीज की अनुमानित संख्या 50 से 500 लाख है। ग्लोबल वार्मिंग के बढ़ते प्रभाव से जल, वायु, मृदा प्रदूषित हो रहे हैं। जिससे वातावरण प्रभावित हो रहा है। प्रजातियों के स्वभाव बदल रहे हैं और उनका जीवन समाप्त हो रहा है।

तेजी से जैव विविधता में कमी होने के कारण मनुष्य का अस्तित्व भी खतरे में आ गया है। इससे बचने के लिए अर्न्तराष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (आई.यू.सी.एन.) ने 2010 को अन्तर्राष्ट्रीय जैव विविधता वर्ष मनाने की घोषणा की थी। आई.यू.सी. ए के अनुसार जैव विविधता का ह्रास हो रहा है। जिससे पेड़ पौधों, जीव जंतुओं का जीवन खतरे में पड़ गया है। यहां तक जमीन भी प्रभावित हो रही है। आई.यू.सी.एन.ने जो प्रजातियां समाप्त हो रही हैं, उनकी सुरक्षा के लिए कदम उठाये गये हैं। लुप्त होने वाली प्रजातियों की सूची बनाई है।

जैव विविधता के अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष के लिए बनाया गया चिन्ह दर्शाता है कि जैव विविधता से ही समग्र जीवन है।

- डॉ. ए.के.चतुर्वेदी
26 कावेरी एनक्लेव फेज
निकट स्वर्ण जयंती नगर, रामघाट रोड,
अलीगढ़- 202001 (उ.प्र.)

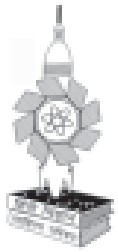

2. मधुमेह : कारण और उपचार

मधुमेह एक रोग है, इससे रक्त के ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है तथा शरीर की कोशिकाएं शर्करा का उपयोग नहीं कर पातीं। यह रोग 'इंसुलिन' नामक रसायन की कमी से होता है, जिसका स्राव शरीर में अग्न्याशय (पैंक्रियाज) द्वारा होता है।

डायबिटीज मेलाइट्स (हारपरग्लाइसीमिया, हाई शुगर, हाई ग्लूकोज, मधुमेह (ग्लूकोज इनटॉलरेंस) के नाम से भी जाना जाता है उसका साधारण भाषा में अर्थ है- 'मीठा मूत्र' क्योंकि प्रायः देखा गया है कि मधुमेह रोगियों के मूत्र में शर्करा पाई जाती है। मधुमेह रोग डायबिटिज इंसीपिडस (Insipidus) से अलग रोग है। डायबिटिज इंसीपिडस में बहुमूत्र की समस्या तो आती है परंतु मूत्र में शर्करा नहीं पाई जाती। डायबिटीज मेलाइट्स सामान्यतः डायबिटीज के नाम से ही प्रसिद्ध है। इसमें रोगी कभी भी तत्काल लक्षणों की शिकायत नहीं करते किंतु रक्त में ग्लूकोज का बढ़ता हुआ स्तर शरीर के भीतरी अवयवों हृदय व गुर्दे आदि को भी नष्ट कर देता है। यह दीर्घकालीन रोग है, जिसमें सावधानि पूर्वक जीवनशैली अपनाने वाले रोगी 35-40 वर्ष तक इस रोग के साथ जीवित रहते हैं।

क्यों होता है मधुमेह?

हमारे भोजन में कार्बोहाइड्रेट एक प्रमुख पदार्थ है, जो शरीर की ऊर्जा का स्रोत है। वास्तव में शरीर के 65 से 75% ऊर्जा इसी से प्राप्त होती है। ये कार्बोहाइड्रेट पाचन तंत्र में पहुंचते ही ग्लूकोज में बदल कर रक्त प्रवाह में मिल जाते हैं इसलिए भोजन लेने के आधे घंटे भीतर ही रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है तथा दो घंटे में अपनी चरम सीमा 125–140 मि.ग्रा./डे.ली.पर पहुंच जाता है।

दूसरी ओर शरीर तथा मस्तिष्क की सभी कोशिकाएं इस ग्लूकोज का उपयोग करने लगती है। ग्लूकोज छोटी रक्त नलिकाओं द्वारा प्रत्येक कोशिका में प्रवेश करता है, वहां इससे ऊर्जा प्राप्त की जाती है। यह प्रक्रिया दो से तीन घंटे के भीतर रक्त में ग्लूकोज के स्तर को घटा देती है। मधुमेह में इंसुलिन की कमी के कारण कोशिकाएं ग्लूकोज का उपयोग नहीं कर पातीं क्योंकि इंसुलिन के अभाव में ग्लूकोज कोशिकाओं में प्रवेश ही नहीं कर पाता। इंसुलिन एक द्वार रक्षक की तरह ग्लूकोज को कोशिकाओं में प्रवेश करवाता है। यदि ऐसा न हो सके तो शरीर की कोशिकाओं के साथ-साथ अन्य अंगों को भी रक्त में ग्लूकोज के बढ़ते स्तर के कारण हानि होती है। यह स्थिति उस प्यासे की तरह है जो अपने पास पानी होने पर भी उसे चारों ओर ढूंढ़ रहा है। इंसुलिन में कमी के कारण रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ कर 140 मि.ग्रा./डे.ली. या अधिक हो जाए तो व्यक्ति मधुमेह का रोगी माना जाता है। असावधान रोगियों में यह स्तर बढ़ कर 500 मि.ग्रा./डे.ली तक भी जा सकता है। मधुमेह रोग जटिलताओं में भरा है। सालों साल यदि रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ा रहे तो प्रत्येक अंग की छोटी रक्त नलिकाएं नष्ट हो जाती हैं जिसे माइक्रो एंजियोपैथी कहा जाता है। तंत्रिकातंत्र की खराबी 'न्यूरोपैथी, गुर्दों की खराबी नेफरोपैथी' व नेत्रों की खराबी 'रेटीनोपैथी' कहलाती है। इसके अलावा हृदय रोगों का आक्रमण होते भी देर नहीं लगती।

मधुमेह के प्रकार - डायबिटीज मेलाइट्स को मोटे तौर पर निम्न छह वर्गों में बांटा जा सकता है, जिनका सारांश इस प्रकार है :-

टाइप - 1 (इंसुलिन आश्रित मधुमेह)

इसमें अग्न्याशय इंसुलिन नामक हार्मोन नहीं बना पाता जिससे ग्लूकोज शरीर की कोशिकाओं को ऊर्जा नहीं दे पाता। इस टाइप में रोगी को रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य रखने के लिए नियमित रुप से इंसुलिन के इंजेक्शन लेने पड़ते हैं। इसे 'ज्यूविनाइल ऑनसैट डायबिटीज' के नाम से भी जाना जाता है। यह रोग प्रायः किशोरावस्था में पाया जाता है। इस रोग में ऑटोइम्यूनिटी के कारण रोगी का वजन कम हो जाता है।

टाइप-2 (इंसुलिन अनाश्रित मधुमेह)- लगभग 90% मधुमेह रोगी टाइप- 2 डायबिटीज के रोगी हैं। इस वर्ग में अग्न्याशय इंसुलिन बनाता तो है परंतु इंसुलिन कम मात्रा में बनती है, या फिर अग्न्याशय से ठीक समय पर छूट नहीं पाती जिससे रक्त में ग्लूकोज का स्तर अनियंत्रित हो जाता है। इस प्रकार के मधुमेह में आनुवंशिक कारण भी महत्वपूर्ण हैं। कई परिवारों में यह रोग पीढ़ी दर पीढ़ी पाया जाता है। यह वयस्कों तथा मोटापे से ग्रस्त व्यक्तियों में धीरे-धीरे अपनी जड़े जमा लेता है। अधिकतर रोगी अपना वजन घटा कर, नियमित आहार पर ध्यान दे कर तथा औषधि ले कर इस रोग पर काबू पा लेते हैं।

टाइप - 3 एम.आर.डी.ए (कुपोषण जनित मधुमेह)

भारत में 16-28 आयु वर्ग के किशोर तथा किशोरियां कुपोषण से ग्रस्त हैं। इस दशा में अग्राशय पर्याप्त मात्रा में

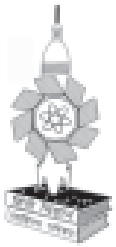

इंसुलिन नहीं बना पाता। रोगियों को इंसुलिन के इंजेक्शन देने पड़ते हैं। इस प्रकार रोगियों में इंसुलिन के इंजेक्शन बंद करने पर कीटोएसिडोसिस विकसित नहीं हो पाता।

टाइप - 4 आई.जी.टी (इंपेयर्ड ग्लूकोज टोलरेंस)

यदि रोगी को 75 ग्राम ग्लूकोज का घोल पिलाया जाए और रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य तथा मधुमेह के बीच 125-150 मि.ग्रा./डे.ली. हो जाए तो यह स्थिति आई.टी.जी. कहलाती है। इस श्रेणी के रोगी में प्रायः मधुमेह के लक्षण दिखाई नहीं देते परंतु ऐसे रोगियों में भविष्य में मधुमेह हो सकता है।

टाइप - 5 जैस्टेशनल डायबिटीज (गर्भावस्था के दौरान)

गर्भावस्था के दौरान वाले वाली मधुमेह जैस्टेशनल डायबिटीज कहलाती है। 3-4 % गर्भावस्था में ऐसा हो सकता है। इसके दौरान गर्भावस्था में मधुमेह से संबंधित जटिलताएं बढ़ जाती हैं तथा भविष्य में माता तथा संतान को भी मधुमेह होने की आशंका बढ़ जाती है।

टाइप - 6 सेकेंडरी डायबिटीज

जब अन्य रोगों के साथ मधुमेह हो तो उसे सेकेंडरी डायबिटीज कहते हैं। इसमें अग्न्याशय नष्ट हो जाता है जिससे इंसुलिन का स्राव असामान्य हो जाता है।

यदि रोगी अपनी ब्लड ग्लूकोज का स्तर नियंत्रित रखे तो यह रोग उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाता। वैसे तो नियमित खान-पान ही रोग को काफी हद तक संभाल लेता है किंतु व्यायाम, तनाव प्रबंधन, योग तथा रोग की संपूर्ण जानकारी के साथ रोग का निदान और भी सरल हो जाता है। कई बार जीवनशैली में सुधार तथा दवाओं के प्रयोग से भी रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है। यदि रक्त में ग्लूकोज का स्तर नियंत्रित रखने के अन्य उपाय कारगर न रहे तो इंसुलिन एक रामबाण औषधि के रुप में मौजूद है।

-डॉ.सरोज शुक्ला
लखनऊ

3. जापानी सूनामी और नाभिकीय विकिरण

11 मार्च 2011 को जापान में आए भूकंप जो रिक्टर पैमाने पर 9.0 तीव्रता का था और इसके कारण उत्पन्न सुनामी से जान व माल की हानि के अलावा एक तीसरा संकट भी आ खड़ा हुआ। जापान के फुकुशीमा के नाभिकीय संयंत्रों में सुनामी की लहरों से रिएक्टर संचालन बाधित हुए, और उनके भवनों को क्षति पहुंची। रिएक्टर बंद होने के अलावा, समुद्री पानी ने सभी नियंत्रण व्यवस्था को भंग कर दिया। उचित मात्रा में शीतलक न होने से रिएक्टरों में बनने वाली हाइड्रोजन की मात्रा बढ़ती गयी, और इसके वायुमंडलीय ऑक्सीजन के संपर्क में आने से विस्फोट हो गया और इससे नाभिकीय विकिरण का संकट पैदा हो गया।

40 वर्ष पुराने फुकुशीमा के दायची नाभिकीय संयंत्र में आयी इस गड़बड़ी का प्रमुख कारण वैकल्पिक सुरक्षा जनरेटर था, जो काम नहीं कर पा रहा था। वैकल्पिक सुरक्षा जनरेटर नाभिकीय संयंत्र को उसके विफल होने की स्थिति में ठंडा रखते हैं। ठंडा रखने का यह कार्य किसी शीतलक को संयंत्र में पंप कर किया जाता है। यह शीतलक पानी भी हो सकता है। सामान्य स्थिति में नाभिकीय संयंत्र से उत्पन्न विद्युत से ही पंप चलते हैं जिनका उपयोग संयंत्र को ठंडा करने हेतु होता हैं। लेकिन रखरखाव के समय जब नाभिकीय संयंत्र को बंद किया जाता है तब इस संयंत्र को वैकल्पिक जेनरेटर से उत्पन्न विद्युत द्वारा संचालित पंपों से ठंडा किया जाता है। इन्हीं वैकल्पिक सुरक्षा जनरेटरों को रखरखाव के अतिरिक्त आपातकालीन स्थिति में प्रयोग किया जाता है।

11 मार्च को भूकंप आने पर नाभिकीय संयंत्र से विद्युत उत्पादन स्वचालित रूप से बंद हो गया। विद्युत उत्पादन के लिए ऊष्मा प्रदान करनेवाली नाभिकीय विखंडन प्रक्रिया रूक गयी, लेकिन यूरेनियम 235 के विखंडन से उत्पन्न अन्य पदार्थ भी रेडियो सक्रिय होते है। और ये पदार्थ भी अपने विखंडन से ऊष्मा उत्पन्न करते हैं। इन रेडियो सक्रिय पदार्थों से ऊष्मा तब तक निकलती हैं जब तक इनमें सक्रियता बनी रहती है। जो कुछ सप्ताह या महीनों तक हो सकती है। यह अवधि संयंत्र के इतिहास और अन्य कारकों पर निर्भर करती है। संयंत्र के बंद होने के पश्चात की विखंडन क्रिया से उत्पन्न यह ऊष्मा कार्यरत संयंत्र के द्वारा उत्पन्न ऊर्जा से कम

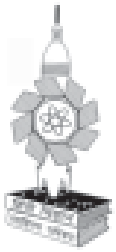

तो होती है लेकिन इसकी मात्रा नगण्य नहीं होती है। इस उष्मा को नियंत्रित करना आवश्यक होता है, इसलिए संयंत्र के बंद होने के बाद वैकल्पिक सुरक्षा व्यवस्था द्वारा संयंत्र को ठंडा रखा जाता है। दायची का संयंत्र आधुनिक तरीके का नहीं था। इसमें रेडियो सक्रिय पदार्थों को ठंडा रखने वाली प्रणाली नहीं थी। आधुनिक संयंत्रों में संयंत्र के बंद होने की स्थिति में अतिरिक्त ऊष्मा स्वचालित संवहन शीतलक प्रणाली द्वारा बाहर निकाल दी जाती है। इस दुर्घटना के अन्य कारणों में से एक यह भी था कि एक संयंत्र (इकाई 4) रखरखाव के लिए बंद था। जिसके नाभिकीय पदार्थ की छड़ें बाहर रखी थी।जबकि ये छड़ें शीतलक पानी में रखी होनी चाहिए थी। इस कारण इन छड़ों का जिरकोनियम आधारित आवरण क्षरित होकर नष्ट हो गया और यूरेनियम ऑक्साइड की छड़ें खुल गयी। इन गर्म छड़ों के पिघलने और पानी के संपर्क में आने से उच्च तापमान पर पानी के अणुओं का विखंडन हुआ और अतिरिक्त हाइड्रोजन गैस बनना शुरु हो गयी। यह हाइड्रोजन गैस संयंत्र के बाहरी भाग में पहुंच गयी। वहां पर ऑक्सीजन के संपर्क में आकर हाइड्रोजन गैस में विस्फोट हो गया। इस विस्फोट से रिएक्टर प्रणाली को एक झटका लगा। ईंधन की छड़ों को ठंडा रखने के अंतिम उपाय के रूप में रिएक्टर में समुद्री जल भरना रह गया था, जो कि रिएक्टर को पुनः उपयोग के लिए अनुपयुक्त बना देता। इस सारे घटनाक्रम को एक साथ देखने से पता चलता है कि घटनायें कुछ इस तरह से घटी कि संयंत्र की सुरक्षा से समझौता करना पड़ा और नाभिकीय विकिरण का खतरा बढ़ गया। इस घटना के पीछे मूल कारण डीजल जेनरेटरों का सुनामी के पश्चात काम नहीं करना था। आधुनिक नाभिकीय रिएक्टरों में ईंधन की छड़ों को ठंडा रखने के लिए बाह्य ऊर्जा स्रोत पर निर्भरता नहीं होती है।

- संजय गोस्वामी -
एन.आर.बी, भा.प.अ.कें., मुंबई-85

4.भारत में भूमि क्षरण का बढ़ता संकट

भारत जैसे कृषि प्रधान देश की पचास प्रतिशत से भी ज्यादा भूमि विभिन्न कारणों से बंजर भूमि में परिवर्तित हो चुकी है, जो देश के लिए एक गंभीर चुनौतीपूर्ण समस्या है। अतः कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था की मजबूती तथा भूखमरी एवं कुपोषण से निजात के लिए उपजाऊ भूमि के संरक्षण के साथ-साथ क्षरित भूमि का पुनरुत्थान आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

भूमि एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है, जो हमें भोजन, ईंधन, चारा एवं लकड़ी प्रदान करती है। दुर्भाग्यवश भारत में सदियों से खाद्यान्न उत्पादन हेतु भूमि का शोषण किया गया, जो भूमि क्षरण के प्रमुख कारणों में से एक है। भूमि क्षरण के फलस्वरुप उसकी उपजाऊ क्षमता कम हो जाती है, और उपजाऊ भूमि बंजर भूमि में परिवर्तित हो जाती है। क्षरित भूमि किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के लिए बहुत बड़ी हानि है। भारत में विभिन्न कारणों से भूमि क्षरण की दर में लगातार वृद्धि हो रही है. सिकुड़ते भूमि संसाधन आज भारत जैसे विकासशील देश के लिए सबसे बड़ी समस्या है। देश में मनुष्य भूमि अनुपात मुश्किल से 0.48 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति है जो दुनिया के न्यूनतम अनुपातों में से एक है।

क्षरित भूमि के अंतर्गत अपरदित भूमि, लवणीय एवं क्षारीय भूमि, जलजमाव से प्रभावित भूमि बीहड़ भूमि, खनन गतिविधियों से प्रभावित भूमि आदि शामिल हैं. भारत की भूमि का कुल क्षेत्रफल 329 मिलियन हेक्टेयर हैं जिसमें से लगभग 178 मिलियन हेक्टेयर भूमि (54%) विभिन्न कारणों से बंजर भूमि में परिवर्तित हो चुकी है. इसमें लगभग 40 मिलियन हेक्टेयर क्षरित वन भी सम्मिलित है। देश की कुल कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल 144 मिलियन हेक्टेयर है जिसमें लगभग 56% (80.6 मिलियन हेक्टेयर) गलत कृषि कार्यों के परिणामस्वरुप बेकार या बंजर हो चुकी है और अब घने वन सिकुड़कर कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का केवल 11% (36.2 मिलियन हेक्टेयर) रह गये हैं।

वर्तमान में भारत में मृदा अपरदन की दर लगभग 2600 मिलियन टन प्रतिवर्ष है। देश की लगभग 140 मिलियन हेक्टेयर भूमि, जल तथा वायु मृदा अपरदन से प्रभावित है जिसके परिणामस्वरुप मिट्टी की ऊपरी परत की हानि की दर लगभग 6,000 मिलियन टन प्रतिवर्ष है जिसमें 5.53 मिलियन टन नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश की मात्रा

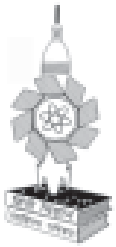

होती है।

भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग एक-चौथाई भाग जल अपरदन से प्रभावित है। देश में सिर्फ जल अपरदन द्वारा प्रतिवर्ष लगभग 6,000 टन ऊपरी मिट्टी का कटाव होता है। जिसमें पोषक तत्वों की मात्रा की अनुमानित कीमत 1,000 करोड़ रुपये से भी ज्यादा की होती है।

जल द्वारा मृदा अपरदन दक्षिण एवं पूर्वी भारत के लाल एवं लैटराइट मृदा की एक प्रमुख समस्या है जहां लगभग 40 टन प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी की ऊपरी सतह का ह्रास प्रतिवर्ष होता है। मध्य भारत की काली मिट्टी के कुल क्षेत्रफल 70 मिलियन हेक्टेयर का लगभग 6.7 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पहले से ही मृदा अपरदन के कारण बेकार हो चुका है। उत्तरी-पूर्वी भारत की लगभग 4.4 मिलियन हेक्टेयर भूमि झूम कृषि (स्थानान्तरी कृषि) के कारण गंभीर भूमि क्षरण से प्रभावित है।

भारत में तीव्र जल अपरदन के कारण लगभग 3.67 मिलियन हेक्टेयर भूमि बीहड़ भूमि में परिवर्तित हो चुकी है। ये बीहड मुख्यतः उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और गुजरात राज्य में फैले हैं। यमुना चम्बल, माही, बेतवा, साबरमती तथा उनकी सहायक नदियां इन राज्यों में भूमि अपरदन के लिए उत्तरदायी हैं. एक संरक्षित अनुमान के अनुसार भारत में बीहड़ भूमि पुनरुत्थान न होने के कारण प्रतिवर्ष लगभग 157 करोड़ रुपये का घाटा हो रहा है।

देश की कुल लवण प्रभावित भूमि का लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्रफल सिंधु गंगा मैदानों के अंतर्गत उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, हरियाणा तथा पंजाब राज्यों में है।

वायु अपरदन आमतौर से देश के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों की समस्या है जहां की मिट्टी मुख्यतः बलुई होती है जिसके कारण पेड़-पौधे कम संख्या में उगते हैं या पूर्णतः अनुपस्थित होते हैं। भारत में वायु अपरदन से लगभग 50 मिलियन हेक्टेयर भूमि प्रभावित है जिसमें से ज्यादातर भाग राजस्थान एवं गुजरात राज्य के अंतर्गत आते हैं। इन क्षेत्रों में अत्यधिक चराई भूमि अपरदन का एक प्रमुख कारण है।

भूमि क्षरण के कारण

जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण, शहरीकरण, वनविनाश, अत्यधिक चराई, झूम कृषि तथा खनन गतिविधियों भूमि संसाधनों के क्षरण के प्रमुख कारण हैं। इनके अतिरिक्त रासायनिक उर्वरकों एवं जीवनाशकों (पेस्टीसाइड्स) पर आधारित कृषि भी भूमि क्षरण का एक प्रमुख कारण है। हरित क्रांति के आगमन से कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए रासायनिक खादों, कीटनाशकों तथा शाकनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से न केवल वातावरण प्रदूषित हुआ है। अपितु भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने वाले सूक्ष्मजीवों की जनसंख्या में भी लगातार गिरावट दर्ज की गयी है जिससे मृदा की पैदावार शक्ति में कमी आयी है।

अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों, विशेषकर यूरिया के प्रयोग से भूमि अम्लीय हो जाती है। अम्लीय मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे तांबा तथा जस्ता पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की मृदा में आमतौर से कैल्शियम तथा पोटैशियम तत्वों का अभाव होता है. इसलिए इस प्रकार की मृदा में फसल की पैदावार में गिरावट आ जाती है।

रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग से मृदा संरचना नष्ट हो जाती है जिससे मृदा के कण एक दूसरे से अलग हो जाते हैं परिणामस्वरुप मृदा अपरदन की दर में तीव्र वृद्धि की संभावना बढ़ जाती है।

कृषि में जल के अत्यधिक प्रयोग से जलजमाव के कारण मृदा की लवणता एवं क्षारकता में वृद्धि होती है जिससे उपजाऊ भूमि उसर भूमि में परिवर्तित हो जाती है। सिंचाई जल के कुप्रबंधन के कारण देश की लगभग 6 मिलियन हेक्टयर भूमि जल जमाव से प्रभावित है तथा तकरीबन 7 मिलियन हेक्टेयर भूमि लवणता एवं क्षारकता से प्रभावित है।

उपजाऊ भूमि का संरक्षण तथा क्षरित भूमि का पुनरुत्थान अत्यंत ही आवश्यक है ताकि देश में खाद्यान्न उत्पादन को और बढ़ाया जा सके। जिससे कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था को अधिक सुदृढ़ किया जा सके। इसके लिए संपोषित कृषि को अपनाया जाए जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, शाकनाशकों आदि का प्रयोग केवल आवश्यकता पड़ने पर यथोचित मात्रा में होता है। संपोषित कृषि में मृदा की उर्वरा शक्ति की वृद्धि के लिए हरी खाद, गोबर खाद, कम्पोस्ट, केंचुआ खाद, जैविक खाद आदि का उपयोग होता है जिससे मिट्टी का स्वास्थ्य बना रहता है, परिणामस्वरुप मृदा संरक्षण को बढ़ावा मिलता है। साथ ही क्षरित अथवा बंजर भूमि को वनस्पतियों से आच्छादित कर उसे उपजाऊ बनाना भारत जैसे देश के लिए भूमि पुनरुत्थान की सस्ती एवं उत्तम विधि है। इस प्रकार की भूमि पुनरुत्थान विधि को जैविक-पुनरुत्थान विधि के नाम से जाना जाता है।

जल अपरदन से प्रभावित कृषि भूमि का संरक्षण एवं पुनरुत्थान घास की प्रजातियों जैसे दूब (साइनोडान डेक्टिलान), अंजान (सिनक्रस सिलिएटस) तथा मुंज (सैवरम मुंजा) के रोपण से किया जा सकता है। उक्त घास की प्रजातियां आमतौर से बहुवर्षीय एवं कठोर प्रवृत्ति की होती है। इनकी

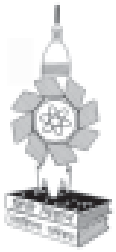

जड़ें मिट्टी के कणों को बांधकर मृदा अपरदन को रोकने में सहायक होती हैं। घासों के निरंतर उगने से मृदा में जीवांश पदार्थ की वृद्धि होती है जिससे मृदा संरचना में सुधार के साथ-साथ उसकी उपजाऊ क्षमता में भी वृद्धि होती है।

वायु अपरदन से प्रभावित भूमि को मेंहदी (लावसोनिया एल्बा) कनेर (थीबेटिया नेरीफोलिया),मदार (कैलोट्रापिस जायिजेण्टिया) अरण्ड (सीसिनस कम्यूनिस), बेर (जीजीफस मारिसियाना), खैर (अकेसिराय कटेचू), सफेद कीकर (अकेसिया ल्यूकाफोलिया) शीशम (डेलबर्जिया शीशू), ईमली (टेमरिण्डस इण्डिका) तथा खेजरी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया) जैसे कठोर पौधों की प्रजातियों के रोपण से संरक्षण प्रदान किये जाने की तत्काल आवश्यकता है।

यद्यपि बीहड़ भूमि का पुनरुत्थान मुश्किल कार्य है बावजूद इसके खैर (अकेसिया कटेचू), खेजरी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया), पलास (ब्यूटिया मोनोस्परमा), शिरीष (एल्बिजिया लिबेक), नीम (एजाडिराक्टा इण्डिका), शीशम (डेलबर्जिया शीशू), चिलबिल (होलोप्टीलिया इन्टग्रीफोलिया), करंज (पानगैमिया पिन्नेटा) तथा नरबॉस (डेण्ड्रोकेलैमस स्ट्रिक्ट्स) जैसी काष्ठीय प्रजातियों का रोपण कर बीहड़ भूमि को स्थिरता प्रदान करने की आवश्यकता है ताकि बीहड़ भूमि विस्तार को रोका जा सके।

यद्यपि खनन गतिविधियां पर्यावरण के दृष्टिकोण से हानिकारक होती है परंतु आर्थिक विकास के लिए अत्यंत ही आवश्यक होती हैं। खननकार्य से अव्यवस्थित भूमि का पुनरुत्थान उस क्षेत्र विशेष में पायी जाने वाली वृक्षों की देशी प्रजातियों से करने की आवश्यकता है। जैसे उष्णकटिबंधीय जलवायु के लिए शीशम (डेलबर्जिया शीशू), करंज (पानगैमिया पिन्नेटा), खैर (अकेसिया कटेचू), सागौन (टेक्टीना ग्राण्डिस), अर्जुन (टर्मिनेलिया अर्जुना), बहेड़ा (टर्मिनेलिया बेलेरिका), आंवला (फाइलैन्थस एम्बिलिका), शिरीष (एल्बिजिमा लिबेक), सफेद शिरीष (एल्बिजिया प्रोसेरा), घमार (मेलाइना आरबोरिया) तथा नीम (एजाडिराक्टा इण्डिका) जैसे वृक्षों की प्रजातियां जैविक-पुनरुत्थान प्रक्रिया के लिए उत्तम होती है। वृक्षों के अतिरिक्त दीनानाथ (पेनिसिटम पेडीसिलेटम) एवं चुराट (हेट्रोपोगान कनटार्ट्स) जैसी देसी प्रजाति की घासें भी इस प्रकार की जलवायु के लिए अति उत्तम होती है। उपरोक्त वनस्पतियां खनन गतिविधियों से अव्यवस्थित भूमि को स्थिरता प्रदान करने के साथ-साथ मृदा पुनर्विकास प्रक्रिया में सहायक होती है।

नीलहरित शैवाल (सूक्ष्मजीवी पौधे) लवणीय एवं क्षारीय भूमि के पुनरुत्थान में अत्यंत ही कारगर होते हैं। नीलहरित शैवालों जैसे-नास्टाक, एनाबीना, अलोसाइडस, साइटोनीमा सिलेण्ड्रोस्परमम ग्लियोट्राइकया, आसैलिटोरिया, ग्लियोकैप्सा तथा स्टाइगोनीमा की प्रजातियां आमतौर से लवणीय एवं क्षारीय मृदा की सतह पर आसानी से उगती है। जिसके फलस्वरुप न केवल जीवांश पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है, अपितु नीलहरित शैवालों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण के परिणामस्वरुप नाइट्रोजन की मात्रा में भी पर्याप्त वृद्धि होती है। जलीय पौधा एजोला पिन्नेटा भी लवणीय तथा क्षारीय भूमि के पुनरुत्थान के लिए उत्तम है। उसके अतिरिक्त करंज (पानगैमिया पिन्नेटा), आंवला (फाइलैन्थस एम्बिलिका), सफेद शिरीष (एल्बिजिया प्रोसेरा), खेजरी (प्रासोपिस सिनेरेरिया), बेर (जीजीफस मारिसियाना), सफेद शहतूत (मोरस एल्बा) तथा काला शहतूत (मोरस नाइग्रा) जैसी बहुउपयोगी वृक्षों की प्रजातियों के रोपण से भी लवणीय एवं क्षारीय भूमि के उद्धार की आवश्यकता है। उपर्युक्त वृक्षों की प्रजातियां लवणीय एवं क्षारीय भूमि पर सफलतापूर्वक उगती हैं तथा अपने मृत अवशेषों जैसे पत्तियों, टहनियों, पंखुड़ियों, फलों आदि से मृदा के भौतिक तथा रासायनिक गुणों को परिवर्तित कर कृषि योग्य बना देती हैं।

जल-जमाव से ग्रसित बंजर भूमि का पुनरुत्थान केवल जल निकासी से ही संभव है। जल-जमाव की समस्या आमतौर से नहर से सिंचाई वाले क्षेत्रों की समस्या है। जल-जमाव से निपटने के लिए आवश्यक है कि सिंचाई के दौरान जल का प्रबंधन ठीक प्रकार से हो साथ ही खेत से अतिरिक्त जल के निकास के लिए नालों की उपयुक्त व्यवस्था हो।

सिकुड़ते भूमि संसाधन आज देश के लिए एक गंभीर समस्या हैं। भूमि क्षरण का प्रत्यक्ष प्रभाव खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ेगा जिससे न सिर्फ भूखमरी और कुपोषण जैसी समस्याओं में वृद्धि होगी अपितु कृषि पर आधारित देश की अर्थव्यवस्था पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा। अतः देश को भूखमरी और कुपोषण से बचाने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए उपजाऊ भूमि का संरक्षण एवं क्षरित भूमि का पुनरुत्थान अति आवश्यक है। भूमि संरक्षण के लिए संपोषित कृषि को अपनाना आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

- डॉ. अरविंद सिंह

ओल्ड डी/3, जोधपुर कालोनी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221005, उ.प्र.

ई-मेल : arvindsingh–bhu@yahoo.com

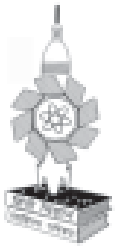

5.मीठा जहर है - ध्वनि प्रदूषण

मानवीय क्रियाकलापों और व्यावसायीकरण ने जहां एक और उसके लिए सुख-सुविधाओं के साधनों में आशातीत वृद्धि की है। वहीं दूसरी ओर यह उसके पतन और विनाश का कारण भी बना है। आज संपूर्ण पृथ्वी के जैविक और भौतिक तत्व पर्यावरण प्रदूषण के गहराते प्रभाव से संत्रस्त है। वायुमंडल में व्याप्त विजातीय कारकों की अधिकता के कारण पृथ्वी का तापमान तेजी से बढ़ रहा है।

वायुमंडल तथा मनुष्य को क्षति पहुंचाने वाले इन्हीं घटकों में से एक है ध्वनि प्रदूषण जिसके कारण जानमाल की हर रोज अपूरणीय क्षति हो रही है। ध्वनि प्रदूषण एक ऐसा मीठा जहर है, जो धीरे-धीरे खतरनाक रूप से हमारे मन मस्तिष्क को निष्क्रिय करता जाता है। हालांकि इसका असर हम रोजाना अपने शरीर और मन पर महसूस तो करते हैं किंतु उसकी उपेक्षा करते जाते हैं। बाद में एक स्थिति ऐसी आती है, जब वह हमारे शरीर को नष्ट कर चुका होता है। अतः यह नितांत आवश्यक है कि हम ध्वनि प्रदूषण के बढ़ते प्रकोप से अपने आपको कम से कम प्रभावित होने दें।

ध्वनि ऊर्जा का स्थानांतरण तरंगों से होता है। शोर (ध्वनि) की तीव्रता मापने की इकाई 'डेसीबेल' है। ध्वनि की गति, वाहक माध्यम की प्रकृति के अनुसार बदलती रहती है। हालांकि एक ध्वनि का स्वरूप 'शोर' प्रदूषण के स्तर पर कब पहुंच जाता है, यह एक सापेक्ष धारणा है। एक व्यक्ति को कोई ध्वनि शोर प्रतीत होता है तो वही ध्वनि किसी दूसरे व्यक्ति को सामान्य ध्वनि लगती है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार आमतौर पर 45 से 60 डेसीबेल की ध्वनि का व्यवहार हम अपने दैनिक जीवन में करते हैं। इस सीमा के भीतर की ध्वनि आमतौर पर मानवीय स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं मानी जाती, किंतु 65 डेसीबेल से अधिक की ध्वनि मनुष्य के लिए यंत्रणादायक सिद्ध हो सकती है। सर्वेक्षण के अनुसार 85 डेसीबेल से अधिक ध्वनि का लगातार श्रवण बहरेपन का कारण हो सकता है। 130 से 150 डेसीबेल ध्वनि का श्रवण करने वाले व्यक्ति के कान के पर्दे भी फट सकते हैं।

कान के तीन भाग होते हैं - बाहरी कान, मध्य कान तथा भीतरी कान। बाहरी कान (ऑट्रीकल) ध्वनि उद्दीपनों को एकत्र करता है। ये एक नली के द्वारा मध्य कान तक ले जाते हैं। यह नली सीधी नहीं होती और जहां यह मध्य यानि कान के परदे के बाहरी दीवार से मिलती है उस स्थान पर सबसे अधिक चौड़ी होती है। नली की स्वेद ग्रंथियां एक प्रकार की मोम जैसी वस्तु निकालती है जिसे 'कर्णमल' कहा जाता है। मध्य कान शंखास्थि (टेम्पोरल बोन) में एक कटोरा सा बना हुआ होता है। यह शंखास्थि खोपड़ी का एक भाग होती है। कान के परदे पर बनी झिल्ली बाहरी कान से ध्वनि कंपनों को प्राप्त करती है।

एक आम गलतफहमी यह है कि निहायत ज्यादा शोरगुल के माहौल में रहने वालों के कान उसके आदी हो जाते हैं। दरअसल होता यह है कि ऐसे माहौल में कान ध्वनि कंपनों को मस्तिष्क तक पहुंचाने की अपनी क्षमता और संवेदनशीलता को धीरे-धीरे खोता जाता है। लगातार शोर के माहौल में रहने पर मध्य कान के नाजुक अंग धीरे-धीरे खराब हो

स्रोत	ध्वनि का माप स्तर (डेसीबेल में)	अनुभव
श्वसन (सास क्रिया)	8-12	शांत
फुसफुसाहट	10-20	शांत
धीमा रेडियो या टी.वी. वार्तालाप	30-40	मधुर
वार्तालाप	50-60	सामान्य एवं कर्णप्रिय
मोटरसाइकिल, स्कूटर	90-100	शोरगुल
बादल की गरज	100-110	प्रबल शोर
मोटर हार्न व रेलगाड़ी का शोर	110-112	प्रबल शोर
बिजली की कड़क या तोपों की गड़गड़ाट का शोर	120-140	काफी शोर
आतिशबाजी का शोर	150-160	पीड़ा का अनुभव

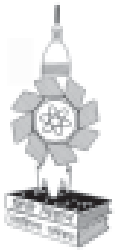

जाते हैं फलस्वरूप वे भीतरी कान को ध्वनि आवेग प्रेषित करने में नाकामयाब होते जाते हैं और एक वक्त ऐसा आता है कि ध्वनि के प्रति शरीर की अनुक्रियाएं भी चुप्पी साध लेती हैं।

यद्यपि किसी व्यक्ति के लिए कोई ध्वनि शोर कब बन जाती है, इसके बारे में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। एक हल्की फुसफुसाहट लगभग 10 डेसीबल के बराबर हल्की बातचीत लगभग 20 डेसीबेल के बराबर और सामान्य बातचीत लगभग 30 ड़ेसीबेल के बराबर होती है। विभिन्न स्रोतो से उत्पन्न ध्वनि की प्रबलता डेसीबल माप के अनुसार तालिका में दर्शाई गई है :

हाल के वर्षों में बड़े महानगरों में ध्वनि प्रदूषण के कारण लोगों में बहरेपन की समस्या में काफी तेजी से वृद्धि हुई है। अधिक शोर-शराबे में जन्म लेने वाले और पलने वाले बच्चों के स्वास्थ्य पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह ऐसे बच्चों की अपंगता, बहरेपन अथवा उनकी असमय मृत्यु का कारण भी बन सकता है।

ध्वनि प्रदूषण हमारे जन-जीवन में महामारी का रूप लेता जा रहा है। इसलिए यदि इसे रोकने के लिए तत्काल प्रभावकारी कदम व उठाए गए तो इसका प्रकोप काफी भयंकर हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि ध्वनि प्रदूषण को रोकने के लिए सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों ही स्तरों पर सम्मिलित रूप से प्रयास किए जाएं।

-अनिल कुमार
क्वार्टर नं.एफ-80, पोस्ट-सिन्दरी,
जिला-धनबाद-828122

6. भारत में स्वास्थ्य सेवा की स्थिति

भारतीय जनसंख्या में बहुत बड़े हिस्से में व्याप्त अज्ञान, गरीबी, सामाजिक कुरीतियों एवं साफ-सफाई की कमी आदि कारणों से स्वास्थ्य से संबंधित समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम 'वाटर एंड सेनिटेशन प्रोग्राम (डब्लूएसपी) के अंतर्गत 'दि इकोनॉमिक इम्पैक्ट्स ऑफ इनएडीक्वेट सेनीटेशन इन इंडिया' नामक रिपोर्ट में बताया गया है कि स्वच्छता की अपर्याप्त व्यवस्था के कारण भारत को वर्ष 2006 में 54 बिलियन डॉलर अथवा देश के सकल घरेलू उत्पाद का 6.4% नुकसान उठाना पड़ा था। विभिन्न बीमारियों तथा स्वास्थ्य से संबंधित अन्य समस्याओं के रूप में देश को इस नुकसान का 70% अर्थात 38.5 बिलियन डॉलर का भुगतान करना पड़ा।

स्वच्छता और सीवेज व्यवस्था के मामले में शहरी क्षेत्रों को अपेक्षाकृत बेहतर माना जाता है, लेकिन आंकड़ों से पता चलता है कि गंदे पानी का 60% हिस्सा बिना उपचार के यहां खुले में छोड़ दिया जाता है। इससे सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए गंभीर संकट पैदा हो जाता है तथा प्रति वर्ष 4,50,000 मौतें होती हैं। गंदे पानी को खुले में छोड़ने का ही यह परिणाम है कि पांच वर्ष से कम आयुवर्ग में प्रत्येक वर्ष अतिसार के 575 मामले सामने आते हैं तथा इस रोग से 3,50,000 लोग मर जाते हैं। एक अनुमान के अनुसार ग्रामीण इलाकों के 60% घरों में शौचालय की कोई व्यवस्था नहीं है। शुद्ध पेयजल के अभाव तथा साफ-सफाई की अनदेखी के कारण यहां लोग अधिक बीमार पड़ते है।

बीमारियों के बढ़ते ग्राफ तथा निवारक उपायों की कमी के कारण भारत में जीवन की गुणवत्ता लगातार प्रभावित हो रही है। हाल ही में जारी यूनीसेफ रिपोर्ट में बताया गया है कि भारत में 17.26 लाख बच्चे अपना पांचवां जन्मदिन मनाने से पहले ही मौत के मुंह में समा जाते है।

स्पष्ट है कि स्वास्थ्य-सेवा की अपर्याप्त व्यवस्था एवं चिकित्सा सुविधाओं तक पहुंच न होने के कारण आम लोगों को अपने जीवन में कई प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता है। अध्ययनों के आधार पर पाया गया है कि कुछ पुरानी बीमारियों ने भारत में बहुत अधिक कहर मचा रखा है। वर्ष 2008 में पूरी दुनिया में कुष्ठ रोग के 2.5 लाख नए मामले दर्ज किए गए। इनमें से भारत में दर्ज मामलों की संख्या 1.37 लाख थी। भारत में कुष्ठ रोग से ग्रस्त बच्चों के 13610 नए मामले सामने आए जो दुनिया के सभी देशों में सर्वाधिक है। यहां उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002 में भारत से वर्ष 2005 तक कुष्ठ रोग के उन्मूलन का लक्ष्य रखा गया था, जो अब तक अधूरा है।

कुष्ठ रोग के समान क्षय रोग के उन्मूलन का कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर 1962 में आरंभ किया गया। लेकिन इसके रोगियों की संख्या चिंताजनक रूप से निरंतर बढ़ रही है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत में प्रत्येक वर्ष लगभग 20 लाख लोग क्षय यानि टीबी रोग से संक्रमित होते हैं और लगभग 4.50 लाख लोगों की इसके कारण मौत हो जाती है। एचआईवी, यौन रोग, मलेरिया, कुष्ठ रोग और

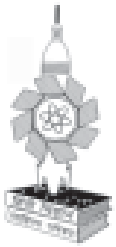

उष्णकटिबंधीय रोगों के शिकार होने वाले लोगों की कुल संख्या से भी अधिक संख्या टीबी से मरने वाले लोगों की है। वैसे तो भारत में इस रोग के लिए उपलब्ध **डॉट्स** उपचार काफी सफल रही है और रोग निवारण की दृष्टि से इसकी सफलता 84% तक पाई गई है लेकिन आज भी अन्य संक्रामक रोग की अपेक्षा टीबी रोग भारतीय युवाशक्ति को सबसे अधिक डंस रहा है।

भारतीय स्वास्थ्य-सेवा की स्थिति

भारत में बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं के अनुरुप स्वास्थ्य सेवाओं के पर्याप्त विस्तार की जरुरत काफी समय से महसूस की जाती रही है। हमारे देश में स्वास्थ्य-सेवा की वर्तमान स्थिति गंभीर है, क्योंकि देश में उपलब्ध चिकित्सा सुविधाएं, स्वास्थ्य सेवाओं का वर्तमान ढांचा और प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की संख्या हमारी जनसंख्या की जरुरतों की अपेक्षा बहुत ही कम है। ऐसे में जनसंख्या के प्रत्येक वर्ग के लिए समुचित स्वास्थ्य सेवा की व्यवस्था करना सरकार के लिए एक चुनौतीपूर्ण कार्य होता जा रहा है। स्वास्थ्य से संबंधित विभिन्न योजनाओं की वर्तमान स्थिति तथा निर्धारित मापदंडों पर भारतीय स्वास्थ्य सेवा के मूल्यांकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस क्षेत्र में अभी काफी कुछ करना बाकी है। तालिका 1 में स्वास्थ्य-सेवा के प्रमुख मानकों की दृष्टि से विश्व के प्रमुख देशों में स्वास्थ्य-सेवा की स्थिति दर्शाई गई है।

देश में बेहतर स्वास्थ्य-सेवा उपलब्ध कराने की दृष्टि से हम काफी पीछे हैं। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के अंतर्गत जारी मानव विकास रिपोर्ट 2010 को देखें तो उससे भी यह

तालिका 1: स्वास्थ्य-सेवा के प्रमुख मानों की दृष्टि से प्रमुख देशों की स्थिति

सुविधाएं / देश	प्रति एक लाख आबादी में टीबी के नए रूग्ण–दर	2 से 5 आयुवर्ग (बच्चों) में कुपोषण की दर	0 से 4 आयुवर्ग (बच्चों)में मृत्यु–दर का प्रतिशत	स्वास्थ्य–सेवाओं पर जीडीपी का हिस्सा (प्रतिशत में)		सेवाओं से वंचित (प्रतिशत में)		स्वास्थ्य–सेवा प्रति एक हजार आबादी के लिए		टीकाकरण का प्रतिशत	
				सरकारी खर्च	निजी खर्च	सफाई (शौचा–लय)	साफ पेय–जल	अस्पताल बिस्तर	प्रशिक्षित डॉक्टर	ट्रिपल टीका	खसरे का टीका
1.भारत	220	65	10.5	1.3	4.7	85	30	0.7	0.41	83	77
2.चीन	166	41	3.6	2.1	1.4	15	30	2.6	1.37	95	96
3.अन्य एशियाई देश	201	53	8.2	1.8	2.7	60	40	1.8	0.31	81	78
4.दक्षिणी अफ्रीकी देश	220	39	15.2	2.5	2.0	65	52	1.4	0.12	52	52
5.लैटिन अमरिकी देश	92	26	5.1	2.4	1.6	3.0	25	2.7	1.25	71	75
6.मध्य पूर्व के देश	99	50	9.0	2.4	1.7	40	30	2.9	1.0	75	74
7.पूर्वी कम्युनिस्ट (भूतपूर्व) देश	52	4	1.9	2.5	1.0	15	10	11.4	4.0	77	86
8.विकसित देश	20	4	1.0	5.6	3.5	15	5	8.3	2.5	80	77
9.विश्व का औसत	142	42	8.7	4.9	3.2	40	30	3.6	1.34	80	79

(विश्व बैंक रिपोर्ट के आंकड़ों पर आधारित)

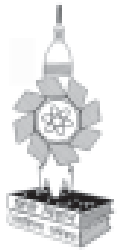

स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में हमारी प्रगति को संतोषजनक नहीं माना जा सकता। पिछले 40 वर्षों के दौरान आय में वृद्धि की दृष्टि से भारत भले ही दुनिया के शीर्ष 10 देशों में सम्मिलित हो गया हो, लेकिन स्वास्थ्य-सेवा की उपलब्धता के मामले में विश्व के कई निर्धन देश भारत से आगे निकल गए हैं। देश-विदेश में उपलब्ध चिकित्सा सुविधाओं और प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की संख्या के आधार पर देखें तो हमारे देश की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। इस संबंध में तालिका 2 के अंतर्गत विश्व के प्रमुख देशों के तुलनात्मक आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं।

स्वास्थ्य सेवा अवसंरचना के विकास पर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण देश के कई राज्यों में स्थिति बहुत अधिक खराब है। इतना ही नहीं, अशिक्षा, बेरोजगारी, अंधविश्वास, अस्वास्थ्यकर परिवेश आदि के कारण स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं को अपेक्षित सफलता नहीं मिल पा रही है। इस पृष्ठभूमि में मधुमेह, टीबी एवं पोलियो जैसी बीमारियों ने देश के दूर-दराज के इलाकों में बड़ी संख्या में लोगों को अपना शिकार बना रखा है। एक नवीनतम अध्ययन के अनुसार 15 वर्ष से अधिक आयु-वर्ग में शहरों की लगभग 11% तथा गावों की 3%

तालिका 2 विश्व के प्रमुख देशों में स्वास्थ्य-सेवा की स्थिति

देश/सुविधाएं	भारत	चीन	सं.रा. अमरीका	ब्राजील	ब्रिटेन	सिंगापुर	सं.रा. अमीरात
रोगियों के लिए उपलब्ध शैय्या की संख्या	10.80 लाख	40.63 लाख	9.75 लाख	4.66 लाख	2.38 लाख	15,948	8,895
शैय्या /1000 व्यक्ति	0.9	3	3.1	2.4	3.9	3.2	1.9
मेडिकल कालेज की संख्या	303	150	132	88	33	2	4
मेडिकल कालेज /1000 व्यक्ति	0.025	0.011	0.042	0.042	0.054	0.043	0.085
नर्सिंग कालेज की संख्या	3,904	लागू नहीं	640	लागू नहीं	42	12	4
डाक्टरों की संख्या	6.43 लाख	18.62 लाख	7.93 लाख	3.20 लाख	1.26 लाख	6,380	6,946
नर्सों की संख्या	13.72 लाख	1.22 करोड़	29.27 लाख	5,49 लाख	37,200	18,710	13,936
दंत–विशेषज्ञों की संख्या	55,344	1.36 लाख	4.63 लाख	2.17 लाख	25,915	1,190	1,368

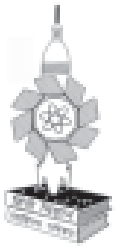

आबादी मधुमेह से पीड़ित है।

भारत में स्वास्थ्य-विशेषज्ञों के सामने एक ओर स्वास्थ्य-सेवा को दुरुस्त करने का महत्वपूर्ण दायित्व है और दूसरी ओर स्वास्थ्य-सेवा तंत्र के क्षेत्र में व्याप्त तमाम कमियों एवं अनियमितताओं के कारण परिस्थितियां बिगड़ रही है। ऐसे परिवेश में स्वास्थ्य के क्षेत्र में आम भारतीय के लिए चुनौतियां लगातार बढ़ रही हैं जबकि प्रशिक्षित स्वास्थ्य-कर्मियों की संख्या लगातार कम हो रही है. आंकड़े बताते हैं कि एक ग्रामीण भारतीय अपनी आय का औसतन 27% हिस्सा स्वास्थ्य की देखभाल के लिए खर्च करता है जबकि भारत सरकार जीडीपी का मात्र 0.9% हिस्सा ही स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च करती है। यही कारण है कि समुचित स्वास्थ्य-सेवा के अभाव में भारत की जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा तरह-तरह की बीमारियों से जूझता हुआ अकाल ही काल के गाल में समा जाता है।

प्रशासनिक प्रबंधन की कमियों एवं प्रत्यक्ष नियंत्रण के अभाव में छोटे कस्बों और गांवों में स्थित प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों का बुरा हाल है। यहां आवश्यक दवाओं के साथ-साथ अधिकांश मामलों में स्वास्थ्यकर्मी भी उपलब्ध नहीं होते। कई बार यहां गरीब मरीजों से इलाज के लिए पैसे मांगने के मामले भी सामने आते हैं. छोटे बच्चों के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्र में रहने वालों और निर्धन वर्ग के लोगों को स्वास्थ्य से संबंधित समस्याओं का सामना अधिक करना पड़ता है. यह भी एक सच्चाई है कि साधन-संपन्न लोगों की अपेक्षा हमारे देश में साधनहीन लोगों को अपने इलाज के लिए अधिक पैसा खर्च करना पड़ रहा है। स्पष्ट है कि अस्वास्थ्यकार परिवेश एवं अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाओं के कारण उत्पन्न बीमारियों के कारण देश के लोगों को भारी कीमत चुकानी पड़ रही है.

स्वास्थ्य सेवा का विवेचन

भारत सरकार द्वारा 1911 में स्थापित भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद और अन्य अनेक संस्थानों के योगदान के बावजूद भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं की गुणवत्ता में गिरावट आई है। स्वास्थ्य से संबंधित राष्ट्रीय योजनाओं के कार्यान्वयन में देरी और सेवा की गुणवत्ता में लापरवाही बरतने आदि कारणों से इनका पूरा लाभ देश को नहीं मिल पाया है। डॉक्टरों एवं नर्सों द्वारा अन्य देशों में बेहतर वेतन तथा सुविधा मिलने पर स्थानीय नौकरियां छोड़ने के परिणामस्वरुप स्वास्थ्य क्षेत्र को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है. वर्तमान स्थिति में यह आवश्यक है कि स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्र में व्यवस्थागत स्तर, अवसंरचनात्मक स्तर एवं शोध कार्य के स्तर पर कुछ मूलभूत बातों पर प्राथमिकता से अमल किया जाए ज़ो निम्नलिखित हैं।

स्वास्थ्य की आदर्श सुरक्षा व्यवस्था

1. रोगों की जांच, निवारण एवं रोकथाम हेतू प्रशिक्षित कार्मिकों की उपलब्धता।

2. देश के सभी क्षेत्र के लोगों को चिकित्सा सुविधाओं की समान उपलब्धता।

3. राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति का विकास।

4. स्वास्थ्य की राष्ट्रीय योजनाओं का कार्यान्वयन एवं गुणवत्ता की निगरानी।

स्वास्थ्य सुविधाओं का अवसंरचनात्मक विकास

1. चिकित्सा महाविद्यालयं की सुविधा की समान उपलब्धता

2. चिकित्सा क्षेत्र के लिए बजट में वृद्धि व टेलीमेडिसिन हेतु संरचनात्मक ढांचे का विकास

3. कुपोषण व संक्रमण के शिकार अत्यंत गरीब लोगों के लिए निशुल्क चिकित्सा व्यवस्था केंद्र

स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में शोध को प्रोत्साहन

1. स्थानीय जलवायु एवं भारतीय आर्थिक-सामाजिक परिवेश के अनुसार उपचार का विकास।

2. जीनोमिक्स, प्रोटियोमिक्स, बायोइनफॉर्मेटिक्स, नैनोटेक्नोलॉजी इत्यादि नवीन विधाओं का समावेश।

3. स्वदेशी चिकित्सा ज्ञान एवं भारतीय उपचार-पद्धतियों के उपयोग हेतु वैज्ञानिक अध्ययन।

निष्कर्षरुपेण कहा जा सकता है कि भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य-सेवा को समुन्नत बनाने की दृष्टि से जरुरी है कि प्रशिक्षित कार्मिकों की उपलब्धता के साथ-साथ आधुनिकतम स्वास्थ्य-सुविधाओं से युक्त चिकित्सा केंद्रों की स्थापना पर जोर दिया जाए। संक्रामक रोगों से बचाव हेतु निवारक उपायों एवं टीकाकरण कार्यक्रमों को अधिक बड़े स्तर पर चलाने की आवश्यकता है। साथ ही, लोगों में पोषण युक्त भोजन, स्वच्छता तथा संबंधित स्वस्थ आदतों के विकास संबंधी जागरुकता जगाना भी जरुरी है। जनस्वास्थ्य की बुनियादी बातों को लोगों तक पहुंचाने में 'वॉलेट्री हेल्थ एसोसिएशन ऑफ इंडिया' का योगदान सराहनीय रहा है। इसी प्रकार सरकारी योजनाओं में भी स्वस्थ जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं और निवारक उपायों के संबंध में आम चेतना जगाने पर बल दिया जाना चाहिए।

- संजय चौधरी

जे एंड के-16 बी, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095

ईमेल -sanjaycrri2007@rediffmail.com

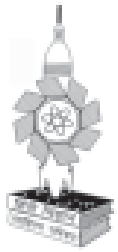

7. सेहत के लिए वरदान है शहद

शहद एक प्राकृतिक मधुर पदार्थ है जो मधुमक्खियों द्वारा पुष्पों के मकरंद को चूसकर तथा उसमें अतिरिक्त पदार्थों को मिलाने के बाद छत्ते के कोषों में एकत्र करने के फलस्वरुप बनता है। दूध के बाद शहद ही ऐसा पदार्थ है जो उत्तम व संतुलित भोजन की श्रेणी में आता है क्योंकि शहद में वे सभी तत्व पाए जाते हैं, जो संतुलित आहार में होने चाहिए।

आयुर्वेद में शहद को मधु के नाम से पहचाना जाता है। आयुर्वेद में शहद को मीठा, शुष्क और शीतल होने के साथ-साथ सावरोधी बताया गया है. यह वात और कफ को नियंत्रित करता है तथा रक्त व पित्त को सामान्य रखता है। इसे नेत्र और दृष्टि के लिए बहुत अच्छा माना गया है। यह प्यास को शांत करता है, कफ को बाहर निकालता है, शरीर में विषाक्तता को कम करता है और हिचकियों को रोकता है। इतना ही नहीं शहद मूत्र मार्ग में उत्पन्न व्याधियों तथा निमोनिया, खांसी, डायरिया, दमा आदि में बहुत उपयोगी होता है। यह घावों के पानी को सोखकर भरण प्रक्रिया को तीव्र करता है तथा उत्तकों की वृद्धि को बढ़ाता है।

शहद में लगभग 75 प्रतिशत शर्करा होती है, जिसमें से फ्रक्टोज, ग्लूकोज, सुक्रोज, माल्टोज, लैक्टोज आदि प्रमुख हैं। शहद में जल 14 से 18 प्रतिशत तक पाया जाता है। अन्य पदार्थों के रुप में प्रोटीन, वसा, एन्जाइम तथा वाष्पशील सुगंधित पदार्थ भी पर्याप्त मात्रा में उपस्थित रहते हैं। यही नहीं, शहद में विटामिन ए, विटामिन बी 1, बी-2, बी 3, बी 5, बी 6, बी 12, तथा अल्प मात्रा में विटामिन सी, विटामिन एच और विटामिन के भी विद्यमान रहते हैं। इसके अतिरिक्त शहद में लोहा, फॉस्फोरस, कैल्शियम, आयोडीन भी पाये जाते हैं।

शहद को पूर्वपाच्य आहार भी कहते हैं क्योंकि इसमें कई प्रकार के एन्जाइम मधुमक्खियों के उदर से आते हैं, जिनमें से इनवर्टेज, एमाइलेज, कैटलेज, ऑक्सीडेज व फॉस्पेटेज प्रमुख हैं। ये एन्जाइम उत्प्रेरक के रुप में जीवों के अंदर होने वाली रासायनिक क्रियाओं में भाग लेते हैं. पुष्पों का मकरन्द मधुमक्खियों के सिर में स्थिर ग्रंथियों से स्रावित एन्जाइम इनवर्टेज की मदद से ग्लूकोज में बदल जाती है। अतः शहद के सेवन के पश्चात आंत के ऊपर का भाग इसे अब शोषित कर लेता है तथा यह तत्काल मस्तिष्क एवं मांसपेशियों तक जाकर ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है जिसके कारण थकान दूर हो जाती है।

शहद के औषधीय गुण :

शहद को घाव पर लगाने से घाव जल्दी भर जाता है क्योंकि शहद आद्रताग्राही होता है। यह घाव में मौजूद अतिरिक्त जल को सोखकर संक्रमण से बचाव करता है।

शहद का पी.एच. मान 3.29 से 4.87 के बीच होता है। ऐसा इसमें उपस्थित एसिटिक, फार्मिक, लैक्टिक, टार्टरिक, फास्फोरिक, फाइटोग्लूटामिक तथा अमीनो अम्लों आदि के कारण होता है। अम्लीय होने के कारण इसमें जीवाणुरोधी गुण स्वतः पाये जाते हैं।

प्रातः काल शौच जाने से पूर्व शहद के साथ बराबर मात्रा में नींबू का रस मिलाकर गुनगुने जल के साथ सेवन करने से मोटापा घटता है, कब्ज दूर होता है तथा रक्त शुद्ध होता है।

गर्भावस्था के दौरान स्त्रियों द्वारा शहद का सेवन करने से पैदा होने वाला शिशु स्वस्थ तथा मानसिक दृष्टि से अन्य शिशुओं से श्रेष्ठ होता है।

त्वचा पर निखार लाने के लिए शहद, बेसन, नींबू एवं तिल मिलाकर उबटन के रुप में इसका प्रयोग त्वचा के उपर करना चाहिए।

त्वचा के जल जाने, कट जाने या छिल जाने पर भी शहद लगाने से लाभ मिलता है।

कम्प्यूटर के सामने बैठकर लंबे समय तक काम करने वाले व्यक्तियों को गाजर के रस के साथ दो चम्मच शहद प्रतिदिन लेने से आंखें स्वस्थ रहती हैं तथा कार्य करते समय मन विचलित नहीं होता है।

तीव्र रक्तचाप की अवस्था में लहसुन के रस के साथ बराबर भाग में शहद मिलाकर लेने से रक्तचाप सामान्य हो जाता है।

असली और नकली शहद पहचान :

शहद की शुद्धता की पहचान उसके रंग, गंध तथा स्वाद को क्रमशः देखकर, सूंघकर तथा खाकर की जा सकती है। शहद को देखने पर यदि उसमें किसी प्रकार की

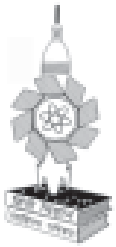

लकीरें न दिखे, सूंघने पर शहद की गंध मिले तथा चखने पर गले में खराश महसूस न हो तो शहद शुद्ध है।

कांच के एक साफ गिलास में पानी भर कर उसमें शहद की एक बूंद टपकायें। यदि शहद तली में बैठ जाए तो शहद शुद्ध है और यदि तली में पहुंचने के पहले ही घुल जाए या फैल जाए तो शहद अशुद्ध और मिलावट वाला है।

शुद्ध शहद देखने में पारदर्शी होता है। जबकि मिलावटी शहद शुद्ध शहद की तुलना में कम पारदर्शी होता है।

शुद्ध शहद में मक्खी गिरकर फंसती नहीं है बल्कि फड़फड़ा कर उड़ जाती है। मिलावटी शहद में मक्खी फंस कर रह जायेगी। काफी कोशिश के बाद भी उड़ नहीं सकेगी।

शुद्ध शहद आंखों में लगने पर थोड़ी जलन होगी पर चिपचिपाहट नहीं होगी और थोड़ी देर के बाद आखों में ठंडक का अनुभव होता है।

शहद की बूंदों को किसी लकड़ी अथवा धागे पर टपका कर आग की लौ से स्पर्श कराने पर यदि शहद जलने लगे तो यह शुद्ध है और यदि न जले या चट-चट की आवाज के साथ धीरे-धीरे जले तो मिलावटी।

शुद्ध शहद सुंगधित होता है, ठंड में जम जाता है और गर्मी में पिघल जाता है जबकि मिलावटी शहद हर समय एक ही तरह का रहता है।

शुद्ध शहद यदि कुत्ते के सामने रख दिया जाये तो वह सूंघ कर उसे छोड़ देगा। जबकि मिलावटी शहद कुत्ता चाटने लगेगा।

शीशा के प्लेट में शहद टपकाने पर यदि उसकी आकृति सांप की कुंडली जैसी बन जाये तो शहद शुद्ध है। मिलावटी शहद प्लेट में गिरते ही फैल जायेगा।

शुद्ध शहद का दाग कपड़ों पर नहीं लगता है जबकि मिलावटी शहद का दाग कपड़ों पर लग जाता है।

सावधनियां

शहद को गुड़, घी, शक्कर, मिश्री, पके कटहल, चिकनाई युक्त तेल, मांस, मछली इत्यादि के साथ नहीं खाना चाहिए।

खुला हुआ कई वर्ष पुराना तथा दुर्गंधयुक्त शहद का सेवन नहीं करना चाहिए।

एक ही बार में अधिक मात्रा में शहद का सेवन करने से उदर-शूल होने की संभावना रहती है।

शहद को कभी भी तेज आंच पर गर्म नहीं करना चाहिए और न ही गर्म व मसालेदार भोज्य पदार्थों में मिलाना चाहिए। शहद में कई प्रकार के पुष्पों के पराग मौजूद होते हैं, जिनमें से कुछ विषाक्त भी होते हैं। शहद को गर्म करने पर या गर्म भोजन में मिलाने पर विषैले परागों की विषाक्तता बढ़ जाती है, जिससे शारीरिक संतुलन में बाधा उत्पन्न होती है।

- अनिल कुमार

क्वार्टर नं. एफ-80, पोस्ट- सिन्दरी, जिला-धनबाद-828122

परमाणु ऊर्जा

देखता विज्ञान जब-जब गांव को,
प्रगति का संचार समुचित हो रहा है।
रोशनी परमाणु ऊर्जा से हुई जब,
तम सिमटकर छांव में दब छुप रहा है।।

शांतिमय परमाणु की इस खोज में,
कल्याणकारी शक्ति जीने के लिए है।
स्वच्छ पर्यावरण सुविधा सकल संचित,
प्रगति वैज्ञानिक प्रतिष्ठा यश लिये है।।

परमाणु बिजलीघर सुरक्षित सुदृढ़ साधन,
समझ लें हम भय न पालें अपने मन में।
भूकंप तो आते रहेंगे इस धरा पर,
कब तक सुनामी से डरेंगे हम स्वयं में।।

आतंक संकट से निपटने में हैं जो सक्षम,
एकता-विश्वास-साहस में सही हों।
शोध वैज्ञानिक करें जो जगत के हित,
देश की उन्नति समृद्धि भी वहीं हों।।

लहलहायें फसलें हर घर अन्न हो,
परमाणु ऊर्जा देश को दे नित उजाला।
नहीं होता है प्रदूषण वायु-जल-ओ-धरा पर,
न ही उड़ता चिमनियों से ऊष्मित धुआं काला।।

महक मिट्टी में सने, जब प्रेम की,
शक्ति देती वह हमें सदभावना की।
उत्कर्ष चाहें हम सदा निज राष्ट्र का,
राहे चले परमाणु शक्ति साधना की।।

विश्वम्भर दयाल तिवारी
तकनीकी सेवाएं प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्रांबे, मुंबई-400 085

विज्ञान समाचार

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र से:

1. सार्वजनिक स्थानों पर रेडियो सक्रिय पदार्थ की मौजूदगी का पता लगाने हेतु हस्त- चालित टेली रेडियो न्यूक्लीआइड संसूचक :

भा.प.अ.केंद्र के इलेक्ट्रॉनिक्स प्रभाग द्वारा सामान्य स्थानों पर उच्च रेडियो सक्रियता वाले रेडियो सक्रिय पदार्थों, जैसे कोबाल्ट-60, सीजियम-137, इत्यादि की उपस्थिति का पता लगाने के लिए एक संहत (compact) एवं सुवाह्य (portable) संसूचन प्रणाली का विकास किया गया है। चूंकि इन रेडियो सक्रिय पदार्थों की अर्ध-आयु (Half-life) बहुत अधिक है तथा सामाजिक हित के विभिन्न क्षेत्रों में इनका बहुतायत में इस्तेमाल होने के कारण, इन्हें प्राप्त कर लेना अपेक्षाकृत आसान है। अतः आशंका इस बात की होती है कि असामाजिक तत्वों द्वारा, इन पदार्थों को विकिरण परिक्षेपण युक्ति (Radiation dispersion devices, dirty bombs) के रूप में दुरुउपयोग कर, जनसाधारण के मन में दहशत उत्पन्न की जा सकती है। हालाँकि इन पदार्थों की रेडियो सक्रियता भले ही उस स्तर पर न हो जिससे जन हानि का खतरा हो, लेकिन भीड़-भाड़ वाले स्थानों में रेडियो सक्रिय पदार्थ की उपस्थिति की अफवाह भी लोगों के बीच भगदड़ और डर का माहौल उत्पन्न कर सकती है। अतः इस प्रकार की स्थिति से निपटने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि ऐसे सार्वजानिक स्थानों की समुचित निगरानी, जनसमूह का ध्यान आकर्षित किये बिना ही की जाय। इस काम के लिए उपयोग में लाया जानेवाला रेडियो न्यूक्लीआइड संसूचक (Radionuclide detector) इतना छोटा होना चाहिए कि वह पाकेट अथवा छोटे हैण्डबैग में आसानी से समा सके। साथ ही उसकी सुग्राहिता (Sensitivity) इतनी अधिक होनी चाहिए कि वह दो-तीन सेकण्ड के समयांतराल में रेडियो-न्यूक्लीआइड की उपस्थिति का पता लगा सके। इसके साथ-साथ यह प्रणाली टेली-संयोजन द्वारा रिमोट सर्वर से भी जुडी होनी चाहिए, जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर अविलंब उचित कार्रवाई की जा सके। वर्तमान में मोबाइल फोन और उनका नेटवर्क सर्व व्याप्त है वस्तुतः जिस किसी भी व्यक्ति के पास मोबाइल फोन उपलब्ध है उसमें रेडियो सक्रिय पदार्थ की उपस्थिति की जानकारी ग्राफीय चित्रण के साथ प्राप्त की जा सकती है।

प्रतिदिन बढ़ती आतंकवादी घटनाओं के मद्दे नजर इस प्रकार के स्वदेशी तकनीक पर आधारित संसूचकों के विकास की आवश्यकता महसूस की गयी जो न केवल सार्वजनिक स्थानों पर रेडियो- सक्रिय पदार्थों का संसूचन करें, बल्कि उनकी पहचान और मौजूदगी के सही स्थान की भी जानकारी प्रदान करें। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर भा.प.अ.के में एक प्रणाली विकसित की गयी है। इसमें एक छोटा सीजियम आयोडाइड (CsI) डिटेक्टर, फोटोडायोड

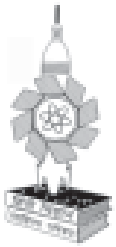

और उपयोगी इलेक्ट्रानिक्स, माइक्रोकंट्रोल शामिल हैं। साथ ही साथ एक वैश्विक स्थिति निर्धारण प्रणाली (Global positioning system, GPS) ब्लू टूथ संयोजन युक्ति वाला मोबाइल फोन भी है जिसमें मौजूद उपयोगी साफ्टवेयर से प्राप्त आंकड़ों को रिमोट सर्वर तक संप्रेषित किया जा सकता है।

इस प्रणाली की कार्य विधि इस प्रकार है कि जैसे ही **रेडियो न्यूक्लीआइड संसूचक** पर निर्धारित मात्रा से अधिक रेडियो सक्रियता का संसूचन होता है, इसकी जानकारी एक अलार्म के साथ मोबाइल फोन पर भेज दी जाती है। मोबाइल फोन की स्क्रीन पर प्रदर्शित होने वाला ग्राफीय चित्रण, रेडियो सक्रियता का स्तर और मौजूद आइसोटोप की जानकारी प्रदान करता है। साथ-ही-साथ मोबाइल फोन द्वारा स्वतः ही यह सूचना रिमोट सर्वर तक पहुँच जाती है। रिमोट सर्वर इस प्रकार मौजूद विकिरण की सूचना स्थिति-संयोजनों के साथ एक मानचित्र के रूप में प्रदर्शित करता है, जिसके आधार पर सुरक्षाकर्मियों द्वारा आवश्यक कार्यवाही को अंजाम दिया जा सकता है।

हालांकि विकसित की गयी मौजूदा प्रणाली में आयातित संवेदकों का प्रयोग किया गया है। परन्तु इसके समतुल्य संवेदकों का विकास भा.प.अ. केंद्र के तकनीकी भौतिकी प्रभाग द्वारा किया जा चुका है। अब इन संवेदकों के इस्तेमाल के पश्चात यह पूर्ण रूपेण स्वदेशी विकसित प्रणाली बन जायेगी और सर्वसाधारण के मन से रेडियो सक्रिय पदार्थ की उपस्थिति की आशंका को दूर करने में अति उपयोगी साबित होगी।

2. इन्फ्रारेड मीथेन गैस अलार्म इकाईः

भा. प. अ. केंद्र द्वारा मीथेन गैस के मानीटरन हेतु गैर परिक्षेपी इन्फ्रारेड (Non Dispersive Infrared, NDIR) तकनीक पर आधारित एक अलार्म प्रणाली का विकास किया गया है। यह प्रणाली मीथेन गैस के अणुओं द्वारा उनके अभिलाक्षणिक अवशोषण बैंड (Characteristic absorption band) पर इन्फ्रारेड ऊर्जा के अवशोषण सिद्धांत पर आधारित है। मीथेन गैस अणुओं द्वारा, इन्फ्रारेड ऊर्जा के अवशोषण की मात्रा वायु में उपस्थित मीथेन गैस की मात्रा के समानुपाती होती है।

मीथेन गैस, पृथ्वी के वायुमंडल में मौजूद संतृप्त हाइड्रो कार्बनों में से, सामान्यतः अधिक मात्रा में व्याप्त है। यह प्राकृतिक गैस और तेल के कुओं से निकलने वाली गैसों में भी मौजूद होती है। यह दलदली इलाकों में कार्बनिक क्षय का प्रमुख उत्पाद है, जो कि जीवाणुओं की प्रक्रिया द्वारा मुक्त होती है। वाहितमल संयंत्रों, से निकलने वाली गैस जहाँ पर जीवाणुओं द्वारा किण्वन (Fermentation) होता है, में मीथेन गैस की मात्रा लगभग 70 प्रतिशत तक होती है। वायुमंडलीय वायु में मीथेन गैस की प्राकृतिक सांद्रता करीब 1.7 पीपीएम है।

उद्योग एवं रसायनों में मीथेन गैस के कई महत्वपूर्ण उपयोग हैं। तरल मीथेन का उपयोग नाभिकीय उद्योग में न्यूट्रानो के शीतलन हेतु किया जाता है। मीथेन गैस एक तरल ईंधन के रूप में बहुतायत में इस्तेमाल होती है। प्रिंटरों की स्याही और पेंट्स बनाने में भी मीथेन गैस का इस्तेमाल होता है। यह रबर उद्योग में मोटर टायरों के निर्माण में भी प्रयोग की जाती है।

चूंकि मीथेन गैस, 5-15 प्रतिशत की सांद्रता पर, हवा के साथ एक विस्फोटक मिश्रण बनाती है। अतः इसके रिसाव अथवा वातावरण में इसकी मात्रा का पता न चलने पर विस्फोट होने का खतरा बना रहता है। वस्तुतः संयंत्रों के कार्यक्षेत्रों में मीथेन की सांद्रता का मापन और इसकी मात्रा सुरक्षित सीमा से अधिक होने पर चेतावनी संकेत दिया जाना अतिआवश्यक होता है। ताकि किसी कारणवश वातावरण में मीथेन गैस की सांद्रता निर्धारित सीमा से अधिक होने पर उसे कम करने हेतु आवश्यक कदम उठाये जा सके।

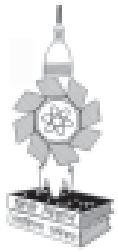

केंद्र द्वारा विकसित की गयी इस तकनीक पर आधारित मानीटरों का अंशांकन (Calibration) प्रयोगशाला में तैयार किये गए, मानक मीथेन गैस मिश्रणों के उपयोग द्वारा किया गया है। अभी यह प्रौद्योगिकी अपने विकासीय चरण पर है।

3. भा. प. अ. केंद्र द्वारा विकसित वायु गतिकी कण आकार पृथक्कारी:

एरोसोल कणों के आकार वितरण का मापन कई क्षेत्रों में महत्वपूर्ण होता है जैसे कि फेफड़ों में एरोसोल दवाइयों की प्रेषण प्रणाली के अभिलक्षणन, अंतःश्वसन जोखिम मूल्यांकन, वायुमंडलीय अध्ययनों तथा पदार्थ संश्लेषण इत्यादि। एरोसोल कणों के आकार मापन के लिए सोपानी संघट्टय (Cascade impactors) अत्यधिक उन्नत और विश्वभर में बड़े पैमाने पर उपयोग की जाने वाली तकनीक है। परन्तु व्यावसायिक रूप से उपलब्ध अधिकतर संघट्टयों की कीमत बहुत ज्यादा होती है। अतः इन्हें कम लागत पर उपलब्ध करने के उद्देश्य से भा.प.अ. केंद्र द्वारा वायु गतिकी कण आकार पृथक्कारी (Particle Aerodynamic Size Separator, PASS) के अभिकल्पन एवं निर्माण की प्रौद्योगिकी का विकास किया गया है। यह आयातित उपकरण के विकल्प के रूप में विकसित की गयी प्रणाली है जो जड़त्वीय संघट्टय (Inertial impaction) सिद्धांत पर आधारित है। इस प्रणाली द्वारा कणों का पृथक्करण उनके वायुगतिकी आकार, के अनुसार लगभग 0.53 से 10 nm की रेंजवाले सात खण्डों में किया जाता है। चूंकि यह स्वदेशी विकसित प्रणाली है, अतः इसका व्यावसायिक स्तर पर निर्माण, आयातित इकाइयों की तुलना में, काफी कम कीमत पर किया जा सकेगा। यह उपकरण ऐसे कई विश्वविद्यालयों एवं राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के लिए अत्यधिक उपयोगी साबित होगा जहाँ पर वायुमंडलीय प्रदूषण एवं एरोसोल अभिलक्षणन पर अध्ययन कार्य किये जा रहे हैं। इस उपकरण की विशेषताएं इस प्रकार हैं-

वायु प्रवाहदर - 45 लीटर प्रति मिनट
अधिकतमखण्डों की संख्या- सात + (एक बैकअप फिल्टर)
प्रभावीकण आकार परास - 0.53 से 10 nm

इस उपकरण के कुछ विशिष्ट उपयोग निम्नलिखित हैं-

➢ यह उपकरण पदार्थ संसाधन, धातुकर्तन, पाउडरहस्तन इत्यादि से जुड़े हुए उद्योगों में रेडियो सक्रिय तथा गैर-रेडियोसक्रिय पर्यावरण के व्यावसायिक मानीटरन हेतु उपयोगी है।

➢ यह वायु गुणवत्ता नियामकों तथा वायु प्रदूषण एवं एरोसोल अनुसंधान से जुड़े हुए अनुसंधानकर्ताओं के लिए भी अतिउपयोगी है।

➢ इस उपकरण का उपयोग दवाई बनाने वाली कंपनियों द्वारा औषधि प्रेषण प्रणाली (Drug delivery system) जैसे कि नेबुलाइजर तथा इन्हैलर के अभिलक्षणन में भी किया जा सकता है।

4. घुलित आक्सीजन मापन प्रणाली :

घुलित आक्सीजन(Dissolve oxygen) मापन हेतु एक ऐसी प्रणाली का विकास किया गया है जो कणयुक्त जलीय अथवा कोशिकीय निलंबन के नियंत्रित वातावरण में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा का लगातार मानीटरन करती है। इस प्रणाली में मौजूद उपकरणों में शामिल हैं- क्लार्क आक्सीजन प्रोब, एक एम्प्लीफायर तथा एक अंकीय डिस्प्ले युक्त माइक्रो कंप्यूटर। इस प्रणाली के कई व्यापक अनुप्रयोग हैं और इसे उद्योगों, अस्पतालों एवं अनुसंधान प्रयोगशालाओं के परीक्षण प्रतिदर्शों में उपस्थित घुलित ऑक्सीजन का पता लगाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इस प्रणाली के कुछ महत्वपूर्ण अनुप्रयोग इस प्रकार हैं-

➢ यह प्रणाली एल्गी कोशिकाओं के निलंबन, अलग किये गए क्लोरोप्लास्ट एवं पादप पत्तियों द्वारा प्रकाश संश्लेषणीय (Photosynthetic) ऑक्सीजन के निष्कासन एवं ग्रहण की दर का निर्धारण करने में उपयोगी है।

➢ पृथक किये गए, पादप एवं जंतु माइटोकांड्रीया में श्वसन के अध्ययन हेतु उपयोगी है।

➢ कृषि और उद्योग से संबंधित क्षेत्रों में भी इस प्रणाली के कई उपयोग हैं- जैसे कि पादप पत्तियों की प्रकाश संश्लेषणीय क्षमता के निर्धारण में, जल प्रतिदर्शों में घुलित आक्सीजन का पता लगाने में, जैविक आक्सीजन मांग (Biological oxygen demand, BOD) संबंधी अनुप्रयोगों में तथा किणवकों (Fermenters) में आक्सीजन स्तर के मापन हेतु अति उपयोगी है।

➢ यह प्रणाली चिकित्सा के क्षेत्र में भी बहुत उपयोगी है क्योंकि इसके द्वारा रक्त में आक्सीजन की मात्रा का पता लगाया जा सकता है। साथ ही माइक्रोप्रोब का उपयोग कर बृहद आकार की कोशिका अथवा ऊतकों में आक्सीजन की सांद्रता का निर्धारण किया जा सकता है।

प्रस्तुति : एस. के. पाठक
वैज्ञानिक अधिकारी (डी)
ईंधन पुनर्संसाधन प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, ट्राम्बे
मुंबई-400085

बुद्धि कौशल्य

यहां कुछ सरल समस्याएं आपके ध्यानाकर्षण के लिए प्रस्तुत हैं। आप इनके उत्तर हमें भेज सकते हैं। कम से कम तीन समस्याओं के शुद्ध उत्तर देने वाले पाठकों में से प्रथम दस के नाम वैज्ञानिक के अगले अंक में प्रकाशित किये जायेगें तथा सभी प्रश्नों के सही हल भेजनेवाले तीन प्रतियोगियों को पुरस्कृत भी किया जायेगा। उत्तर भेजनेवाले कृपया अपना स्पष्ट पता भी साथ में भेजें। अच्छा होगा यदि ये उत्तर हमें नीचे दिए गए ई मेल द्वारा भेजे जाएं। सबंधित ई-मेल के पते नीचे दिए गए हैं। (सं.मं.)

(1) दो पलड़ों वाली सरल तराजू समान भार होने पर क्षैतिज अवस्था में ही अंततः स्थिर होती है। जब कि दोनों पलड़ों के भार का आधूर्ण (Moment) किसी भी झुकाव पर संतुलित रहना चाहिये। क्या आप बता सकते हैं, किस शर्त का आधार लेकर ऐसा किया जा सकता हैं?

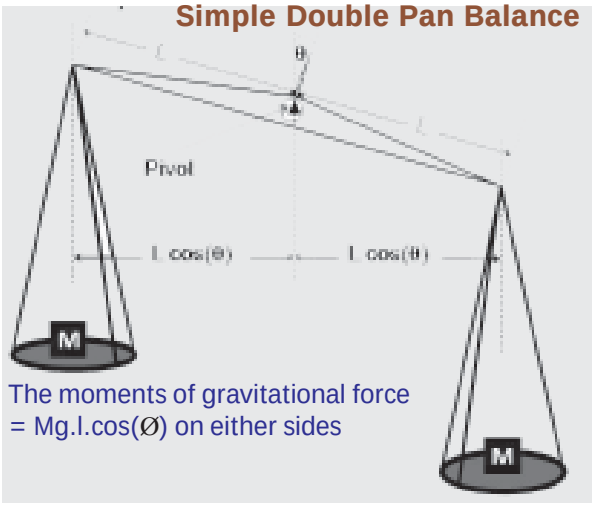

The moments of gravitational force = Mg.l.cos(Ø) on either sides

(2) एक व्यक्ति ऊपर जाती हुई स्वचालित सीढ़ी पर एक निश्चित गति से चढ़ता है और 24 पायदान (सीढ़ी) चढ़ने पर शीर्ष पर पहुंच जाता है। लेकिन उतरने के लिए भी इसी स्वचालित सीढ़ी का उपयोग करता है। किंतु इस बार उसी चाल से उतरने में उसे 40 सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं। आपको बताना है यदि स्वचालित सीढ़ी बन्द हो, तो कितनी सीढ़ियाँ शीर्ष तक पहुंचने के लिए चढ़नी पड़ेगी?

(3) राम घर से निकलते समय काटें वाली घड़ी का दर्पण में प्रतिबिंब देखकर उसे ही सही समय मानते हुए अनुमान लगाता है कि उसे विलंब हो गया है। वह तेजी से चल कर 30 मिनट में गंतव्य पर पहुंचता है। लेकिन वहां की घड़ी देखकर पाता है कि यह घड़ी तो घर से निकलते हुए त्रुटिपूर्ण समय से 40 मिनट पहले का समय दिखा रही है। यदि दोनों ही घड़ियां सही समय दर्शानेवाली हो तो क्या आप बता सकते हैं कि राम किस समय घर से निकला था?

(4) सूरज गंगा नदी में फूलों से भरी नाव ले जा रहा था। जब वह हनुमान घाट के सामने पहुंचा तो उसकी नाव से एक फूलों भरी टोकरी नदी में गिर गयी। इसके बाद भी सूरज उसी दिशा में उसी वेग से 15 मिनट तक नाव चलाता रहा। टोकरी गिरने का आभास होने पर वह नाव को वापस उसी वेग से चलाकर गिरी हुई टोकरी लेने गया और उसे केदारघाट पर पकड़ पाया। यदि हनुमान घाट व केदार घाट के बीच की दूरी 1200 मीटर है, तो आपको बताना है कि उस दौरान गंगा नदी के बहाव की गति क्या रही होगी?

(5) एक सभागृह में 64 सीटें हैं। उसमें एक कार्यक्रम के लिए 64 टिकटें सीट क्रमांक के साथ आवंटित की गयी। कार्यक्रम के दिन पहले पहुंचनेवाले व्यक्ति के टिकट का (क्षत-विक्षत हो जाने से) सीट क्रमांक पढ़ा नहीं जा सकता था, अतः व्यवस्थापक ने उसे किसी भी एक सीट पर बैठने को कहा। उसके बाद के आने वाले व्यक्तियों को आवंटित सीट पर बैठाया जाता था, परंतु यदि आवंटित सीट पर पहले से ही कोई बैठा है (पहले व्यक्ति के कारण) तब उस सीट क्रमांक टिकट वाले को उसके इच्छानुसार खाली सीटों में से किसी एक सीट पर बैठने को कह दिया जाता। सवाल यह है कि अंतिम व्यक्ति (64वां) को उसके टिकट के अनुसार आवंटित सीट मिलने की प्रायिकता (Probability) या संभावना कितनी होगी।

ईमेल :
skumar13d@gmail.com,
j.c.vyas@gmail.com

प्रस्तुति : डॉ.सुरेशकुमार
नाभिकीय भौतिक प्रभाग, भा.प.अ.के.

वैज्ञानिकों के जीवन से

माइकल फ़ैराडे

(1791-1867)

माइकल फ़ैराडे एक हरफ़न मौला अर्थात बहुमुखी प्रतिभावान वैज्ञानिक थे। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, इलेक्ट्रॉनिकी में उन्होंने इतनी और ऐसी बुनियादी खोजें की और उनके सिद्धांत भी प्रतिपादित किये जिसके कारण सारा विज्ञान जगत उनका ऋणी है। वे स्वभाव से बड़े ही नहीं बल्कि सबसे अधिक सीधे सादे गिने चुने वैज्ञानिकों की श्रेणी में आते हैं। उनकी घरेलू तथा आर्थिक स्थितियां कुछ ऐसी हुई कि उन्हें बीच में ही पढ़ाई छोड़कर जीविका की तलाश करनी पड़ी। लंदन में रॉयल सोसाइटी प्रयोगशाला में आवेदन पत्र दिया। उनके सर्टिफ़िकेट देखकर प्रयोगशालाध्यक्ष ने कहा कि आप को यहाँ केवल बोतलें साफ़ करने का काम मिल सकता है। जो उन्होंने स्वीकार कर लिया। बड़ी शराफ़त व निष्ठा से वे अपने कार्य करते रहते थे और बचे हुए समय में पढ़ते व लिखते रहते थे। वैज्ञानिकों के प्रयोग बड़े ग़ौर से देखते, उनकी बातें ग़ौर से सुनते, याद करते व लिख भी लेते थे। समय मिलने पर उन्हीं पर ख़ूब अध्ययन करते थे। जब प्रयोगों में समस्याएं आतीं, तो उनके सुझावों से चटपट वे सुलझ जातीं। उन्होंने बहुत डर-डर के कुछ प्रयोगों को करने की अनुमति मांगी जो मिल गई। 'विद्युत रसायन', विद्युत भौतिकी, विद्युत चुंबकीय प्रेरण, डायनामो, संधारित्र (CAPACITOR) आदि उनके बिना संभव नहीं थे। वे धीरे-धीरे शीर्ष वैज्ञानिकों की श्रेणी में आ गए। पर अपने पुराने दिन कभी नहीं भूले। उनकी जीवनशैली, बात करने का तरीक़ा, सरलता, मिठास व नरमी पहले जैसे ही भरे पड़े थे।

एक बार रॉयल सोसाइटी की एक विशेष सभा में बहुत से वैज्ञानिक आए जो अपनी-अपनी खोजों पर बढ़-चढ़कर भारी भरकम व्याख्यान दे रहे थे। उसी सभा में स्लेटी रंग के पुराने सूट में एक बहुत ही साधारण सा व्यक्ति खड़े-खड़े बड़े ग़ौर से सारी बातें सुन रहा था। सभा समाप्ति पर एक अनजान वैज्ञानिक इनके पास आया और बड़े प्रेम से कंधे पर अपना हाथ रखकर बोला, "क्या तुम इस प्रयोगशाला में बहुत दिनों से काम करते हो?"

फैराडे ने बड़े आदर सूचक शब्दों में कहा, "हाँ महाशय"

उसने पूछा, "क्या चौकीदार जैसा काम करते हो?"

उत्तर मिला, "जी हां, ऐसा ही कुछ समझिये."

उस वैज्ञानिक ने पूछा, "अच्छा भाई, ज़रा अपना नाम तो बताओ."

"माइकल फ़ैराडे"

यह सुनते ही वह वैज्ञानिक मारे शर्म के पानी पानी हो गया, पर फ़ैराडे के चेहरे पर कोई शिकन तक नहीं आई। बात यह थी कि इतने महान वैज्ञानिक बनने के बावजूद उनकी जीवन शैली पहले जैसी ही अर्थात अति सादगी, सरलता व असाधारण शराफ़त से भरी हुई थी। वे कोई भी छोटे से छोटा काम पहले की ही तरह स्वयं करके और दूसरों की सहायता भी करते थे तथा काम की प्रगति में रुकावट कभी नहीं आने देते थे। हर स्तर पर अपने साथियों को पूरा सहयोग देते रहते थे, प्रयोगशालाध्यक्ष बनने के बावजूद भी।

चन्द्रशेखर वेंकट रामन

(1888-1970)

भौतिकी में नोबल पुरस्कार जीतने वाले भारत के पहले और अकेले वैज्ञानिक प्रो. चन्द्रशेखर वेंकट रामन ने खोज की थी कि प्रकाश जब किसी पारदर्शी पदार्थ (ठोस, द्रव या गैस) से होकर गुज़रता है तो उसकी ऊर्जा में पुनर्बटवारा

होता है, और बाहर निकलने वाले प्रकाश की आवृत्ति में मूल आवृत्ति के अलावा सूक्ष्म मात्रा में अन्य आवृत्तियों का प्रकाश भी निकलता है। अर्थात आपातित प्रकाश किरण के कुछ फोटान पदार्थ के साथ अन्तक्रिया करते है, और पदार्थ की संरचना के आधार पर उनकी आवृत्ति में कमी या बढ़त हो जाती है। आपातित फोटानों की आवृत्ति की तुलना में इसकी बढ़त अथवा कमी को मापा जा सकता है। आपातित फोटानों की मूल आवृत्ति की तुलना में आयी आवृत्ति में बदल पदार्थ की संरचना से सीधे संबंधित होती हैं। इस प्रभाव को 'रामन प्रभाव' कहते हैं। अलग-अलग प्रकार के पारदर्शी माध्यमों की अन्तर्संरचनाएं अलग-अलग बन्ध ऊर्जा की होती हैं अतः प्रकाश में रंग या आवृत्ति का परिवर्तन अलग-अलग होता है। तात्पर्य यह है कि आप किसी नियत आवृत्ति के एकवर्णी (monochromatic) प्रकाश को किसी नए अनजाने (unknown) पारदर्शी पदार्थ से गुज़ारकर, पार हुई प्रकाश क़ी आवृत्ति में आये परिवर्तनों को मापकर पदार्थ की अन्तररचना/बन्धों का पता लगा सकते हैं, बिना किसी रासायनिक विश्लेषण किए हुए। यह विशेषता रामन प्रभाव को अति उपयोगी बना देती है। यह प्रयोग क्वांटम यान्त्रिकी की सत्यता की प्रबल रुप से पुष्टि भी करता है।

जब 42 वर्ष की आयु में ही नोबल पुरस्कार जीत कर रामन विश्व प्रसिद्ध हो गये तो एक बार रुस के दौरे पर गये। वहां उनके बहुत से व्याख्यान हुए और उनके बाद ढेर सारे आड़े-तिरछे एवं उल्टे सीधे पीड़ादायक प्रश्न भी। सबके सटीक व सन्तुष्ट उत्तर देने के बाद रुस के वैज्ञानिकों ने उनसे अपनी इस नई खोज पर एक पुस्तक लिखने का आग्रह किया। इस पर उन्होंने कहा, "बस एक पुस्तक! मैं तो समझता हूं कि मेरी इस खोज को समझाने के लिए दस पुस्तकें भी अपर्याप्त होंगी।" इस पर ठहाके से हाल गूंज उठा।

प्रो. ए.सी.बनर्जी
(1891-1969)

महान विश्वविख्यात गणितज्ञ प्रो. ए.सी.बनर्जी एक बार आनन्द भवन, इलाहाबाद में एक बड़ी विज्ञान प्रदर्शनी में एक स्टाल से दूसरे स्टाल की ओर जा रहे थे, तभी एक स्टाल पर रास्ते में एक झाड़ (Chandellier) से उनका सिर ऐसा टकराया कि वह झाड़ चूर-चूर होकर नीचे गिर पड़ा। प्रो. बनर्जी ने पूछा, "इस झाड़ का दाम क्या है?" स्टाल वाले ने कहा, "दस रुपये" उन्होंने तुरंत अपनी कोट के

जेब से एक पांच रुपये का नोट निकालकर उसे देते हुए कहा, "देखो, इसमें मेरी और तुम्हारी दोनों की बराबर की ग़लती है। मैं असाधारण रुप से लंबा हूं और तुम्हारी झाड़ और औसत से ज्यादा नीचे लटकी हुई थी। अतः जुर्माना आधा-आधा हुआ।" स्टाल वाले ने हँसते हुए वह पैसा लेना अस्वीकार कर दिया यह कहकर, "कोई बात नहीं।"

प्रस्तुति - सलाहुद्दीन अहमद
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई

रचनाएं आमंत्रित

'वैज्ञानिक' हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें :

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये
- लेख मौलिक, अप्रकाशित तथा पठनीय हो, साथ ही साथ भाषा सरल, बोधगम्य और रूचकर हो।
- नव लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए युवा एवं नव लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा तथा उन्हें वरियता प्रदान की जायेगी।
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें।
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर कागज के एक ओर ही लिखें।
- विषय वस्तु समझने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद कागज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें।
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जायेंगी।
- पत्रिका को अधिकाधिक रूचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए आप सभी सुधी पाठकों के सुझावों का स्वागत है।
- पत्रिका में वैज्ञानिक विषयों पर लिखी गई पुस्तकों की समीक्षा हेतु पुस्तक की कम से कम एक प्रति अवश्य भेजी जानी चाहिये।

"रचनाएं भेजने का पता"

श्री जयप्रकाश त्रिपाठी,
पी.पी.,एफ.आर.डी.(F.R.D.),
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 085
E-mail : jtripath@barc.gov.in

डॉ.जगदीश चंद्र व्यास,
टी.पी.डी.(T.P.D.),
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 085
E-mail :j.c.vyas@gmail.com

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) RNI. No.:18862/70
दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ.प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता- 2012

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2012 हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है। मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ-साथ अच्छे रेखाचित्रों/ फोटोग्राफों, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है। अत: चित्रों को अलग से सफेद कागज/ ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें। फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हो तो उचित रहेगा। इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें। नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्दों में) भेजें।

अंतिम तिथि : 31 दिसंबर 2012

पुरस्कार

प्रथम	-	2000/रु.
द्वितीय	-	1500/रु.
तृतीय	-	1000/रु.
प्रोत्साहन	-	500/रु.

पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं इतर हिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार 500/-रु. (प्रत्येक) के दिये जायेंगे। अत: अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

विशेष: पुरस्कृत रचनाएं 'वैज्ञानिक' की संपत्ति होगी। 'वैज्ञानिक' पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे। यदि रचना एक ही लेखक द्वारा लिखी गयी हो तो उचित होगा। ईमेल से भेजी गयी प्रविष्टियां प्रशंसनीय होंगी।

प्रविष्टियां भेजने का पता

– श्री विपुल सेन -

प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक, 'वैज्ञानिक'
वैज्ञानिक अधिकारी, ई.डी. एण्ड सी.डी., पी. पी. परिसर,
भा.प.अ.केंद्र (B.A.R.C.), मुंबई- 400085, फोन: 022 25591154
vsen@barc.gov.in, vipkavi@gmail.com